योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 31 जनवरी-फरवरी, 1999 अंक 10-11

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) – 283 202

SIDDHYOG

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु०	7-00
वार्षिक शुल्क	रु०	70-00
द्विवार्षिक	रु०	130-00
आजीवन	रु०	700-00

इस अंक में

- तमोऽङ्कारेणैवायतनेनान्वेति 1
- अनृतकण................................ 2
- क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियाँ और ध्यानयोग (विशेष लेख) 3
- सम्पादकीय 9
- यमनचिकेता संवाद
  पूर्णचन्द्र पंत शास्त्री 11
- प्राणोपासना, प्राणयज्ञ तथा प्राणायाम
  प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा 19
- किमस्तियोगः
  द्वारका प्रसाद शर्मा.................... 25
- श्री उमाशंकर गुप्त की प्राण रक्षा
  केशवदेव उपाध्याय 29
- योग द्वारा हर कार्य सम्भव
  डा० स्वामी केशवाचार्य 32
- योग साधना से चार महत्वपूर्ण सहायक पहलुओं का योगदान
  जय नारायण राय 34
- योगमार्ग के विघ्न
  वैद्यशास्त्री पं० श्रीकमलाकान्तजी त्रिवेदी.. 37

# सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 31 अंक 10/11 — जनवरी/फरवरी 1999

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं
सामभिर्यत् तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति।।

(प्रश्नोपनिषद्/पंचम प्रश्न/७

अर्थात्

ओंकार की एक मात्रा की उपासना से उपासक ऋचाओं द्वारा इस मनुष्य लोक में पहुँचाया जाता है। दुसरा दो मात्राओं की उपासना करने वाला यजुः श्रुत्रियों द्वारा अन्तरिक्ष में चन्द्रलोक तक पहुँचाया जाता है। पूर्णरूप से ओंकार की उपासना करने वाला सामश्रुतियों द्वारा उस ब्रह्मलोक में पहुँचाया जाता है। जिसको ज्ञानीजन जानते है। विवेक शील साधक केवल ओंकार रूप अवलम्बन के द्वारा ही उस परब्रह्म पुरुषोत्तम को पा लेता है, जो वह परम शान्त जरारहित मृत्युरहित, भयरहित और सर्वश्रेष्ठ है।

अमृत कण

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः।।

चाणक्य सूत्र १२.७।।

सज्जन एवं साधुओं की संगति अति लाभकारी होती है। उनका दर्शन मात्र ही पुण्यकारी है। वे साक्षात् तीर्थ–स्वरूप होते है। तीर्थ करने का फल तो समय आने पर ही मिलता है, किन्तु साधू–सन्तों का दर्शन और संगति तुरन्त फलदायी होती है।

* * *

अयं स्वभावः स्वत एव यत्परश्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम्।
सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कशप्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल।।

विवेक चूड़ामणि ।।४०।।

महात्माओं का यह स्वभाव ही है कि वे स्वतः ही दूसरों का श्रम दूर करने में प्रवृत्त होते है। सूर्य के प्रचण्ड तेज से सन्तप्त पृथ्वीतल को चन्द्रदेव स्वयं ही शान्त कर देते है।

* * *

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

गीता १८/६२

जिस परमेश्वर ने कर्म करने की शक्ति–सामग्री प्रदान की है, जो तुम्हारे ह्रदय में स्थित है और तुम्हारा प्रेरक है उसी की सब प्रकार से शरण ग्रहण करो। उसी की कृपा से परम शान्ति और निश्चल परम धाम को प्राप्त होओगे।

* * *

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदंति।।

कठोपनिषद् अ. १ व. ३/१४

हे मनुष्यों ! उठो, जागो और श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर उनके पास जाकर, उनके द्वारा, उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो। क्योंकि त्रिकालज्ञ ज्ञानीजन इस तत्त्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सदृश दुर्गम बतलाते है।

विशेष लेख

क्लिष्टाक्लिष्ट वृत्तियाँ और ध्यानयोग

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैंने तुम्हें कई बार समझाया है कि **ध्यान हेयास्तद्वृत्तय:** के नियमानुसार हमारी क्लिष्ट और अक्लिष्ट जितनी भी वृत्तियाँ है वह योग ध्यान से ही हटाई जा सकती है। क्लिष्ट वृत्ति दुःखरूप है। संसार की ओर ले जाती है। अधर्म एवं तम की ओर ले जाती है। अक्लिष्ट वृत्ति शुभ वृत्ति को कहते है। यह ज्ञान एवं वैराग्य की ओर ले जाती है। वृत्तियों के विषय में यह जानना आवश्यक है कि **क्लिष्टच्छिद्रेष्वप्यक्लिष्टा भवन्ति अक्लिष्ट छिद्रेषु क्लिष्टा इति।** अर्थात् क्लिष्ट वृत्तियों के बीच–बीच में अक्लिष्ट वृत्तियाँ आ जाया करती है और अक्लिष्ट के बीच में क्लिष्ट वृत्तियाँ रहा करती है। उदाहरण के लिये इसे ऐसा समझ लो। मानसिंह नाम का डाकू मध्य भारत में मशहूर हुआ है। क्लिष्ट वृत्तियों के कारण उसकी डाकू की प्रवृत्ति बनी, किन्तु क्लिष्ट वृत्तियों के बीच–बीच में अक्लिष्ट वृत्तियों के रहने के कारण वह पुण्य के कार्य भी किया करता था। वह विद्यालयों की स्थापना में पैसे लगाता था, कुँए तालाब खुदवाता था, अन्न क्षेत्र खोलता था तथा अनेक प्रकार से गरीबों का मददगार भी था। इस प्रकार से वह धन का उपयोग कुछ कुछ पुण्य के कार्यों में भी लगाता था। अस्तु।

हम लोग इन्द्रियों के बाह्य विषयों का ही भोग ग्रहण करते हैं। यह हमारा बाह्य भोग है हमें भीतर का ज्ञान हो नहीं पाता। अच्छी व बुरी दोनों प्रकार की वृत्तियों को निपटाने के दो क्रम है। एक तो है **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तय:'** के नियम से हम ध्यान योग के अभ्यास से वृत्ति को हटा लेते है। ध्यान योग के अभ्यास से इन वृत्तियों का स्थूल रूप खत्म होता है। जो वृत्तियाँ सूक्ष्म रूप में रह जाती है वे **'ते प्रतिप्रसवहेया:'** के अनुसार समाधि अथवा लयता को प्राप्त होने पर समाप्त हो जाते है। ध्यान योग का अभ्यास क्रम ध्यान, धारणा और समाधि के अभ्यास से बनता है। मैं तुम्हें धारणा, ध्यान के विषय में रोज–रोज ही समझाता रहता हूँ। **'देशबन्ध चित्तस्य धारणा'** अपने चित्त को एक लक्ष्य स्थान पर जमाना **धारणा** कहलाता है। बाह्य और आभ्यान्तर भेद से धारणा दो प्रकार का होता है। बाह्य धारणा में जैसे गीता में भगवान ने **'सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन'** के अनुसार हठयोग की विधि से धारणा का उपदेश दिया है। किन्तु इस धारण के लिये भी पहले त्राटक का अभ्यास करना आवश्यक हो जाता है। त्राटक हठयोग का विषय है। वासना भोगी हठयोग का अधिकारी नहीं होता। कोई जितेन्द्रिय पूर्ण ब्रह्मचारी एवं संयमी को ही हठयोग का अभ्यास करना चाहिये। नासिकाग्र पर धारणा करने से पहले त्राटक का अभ्यास करना होता है। त्राटक के अभ्यास में एक काला बिन्दु

बनाकर उसे बार–बार देखना होता है। धीरे–धीरे अभ्यास बढ़ाते–बढ़ाते इस काले बिन्दु के चारों ओर प्रकाश दिखाई देने लगता है। देखते–देखते काला बिन्दु भी दीखना खत्म हो जायेगा केवल रोशनी ही रह जायेगी और वह रोशनी आँखों में समा जायेगी जो उसे दिव्य दृष्टि वाली बना देगी। हमने उस प्रकाश वाली आँखों से नासिकाग्र भाग को देखना शुरू किया धीरे–धीरे वह रोशनी मूर्धा ज्योति तक आ गई। इसका परिणाम होगा **मूर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्;** अर्थात् मूर्धा ज्योति के दीख जाने पर सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं और सिद्धों का दीखना खाली नहीं जाता। वह सामने आने पर साधक को मनोअभिलषित पदार्थ दे देते हैं। वरदान आदि दिया करते हैं। सिद्धों के संकल्प से योगी सहस्रार तक पहुँच जाता है। इस प्रकार से उसको निर्जीव समाधि होने लगती है। यह बाह्य धारणा का फल है। यह बात अलग है कि हम बाह्य धारणा को त्राटक तक सीमित रखें या आगे बढ़ायें। योग दर्शन में **'भुवन ज्ञान सूर्येसंयमात्;** का सिद्धान्त आता है। इसका तात्पर्य है कि सूर्य में संयम करने से योगी को समस्त भुवनों का ज्ञान हो जाता है। किन्तु यह संयम स्थूल सूर्य में नहीं करना होता। हमारी आँखें अग्नि तत्व की बनी हैं और सूर्य उस अग्नि तत्व का केन्द्र है। नियमानुसार बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को अपने में मिला लेती है। यदि हम स्थूल सूर्य पर अपनी इन आँखों से देखना प्रारम्भ करेंगे तो हम अन्धे हो जायेंगे। कुछ दिन पूर्व चण्डीगढ़ में किसी व्यक्ति ने इसी प्रकार से सूर्य पर संयम करना प्रारम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वह बिल्कुल अन्धा हो गया। उसकी आँखों की रोशनी जाती रही।

योगी अपने संयम बल से सूर्य में संयम करता है इस प्रकार लयता प्राप्त करके भुवन ज्ञान प्राप्त करता है। बनारस में हमारा एक साधु रहता है। उसे श्री प्रभु जी ने महीने पर भोजनादि बनाने के लिये रख लिया था। बाद में हमारे जमाने में ही उसने श्री प्रभु जी के सामने ही त्राटक का अभ्यास करना शुरू कर दिया था। श्री प्रभु जी की कृपा एवं शक्तिपात् उसे प्राप्त हो गया। बाद में वह बनारस चला गया। हमारा एक बच्चा विष्णु है। वह बतलाता था कि वह साधु त्राटक के परिणाम स्वरूप दीवार के उस पार आने जाने वाले व्यक्तियों को भी देख लेता है। यह शक्ति उसको त्राटक के अभ्यास से प्राप्त हुई। उसकी आँखे तेजोमयी हो गई थीं। ऐसा व्यक्ति उन आँखों से जमीन के भीतर सभी वस्तुओं को देख लेने में समर्थ हो जाता है। अस्तु ! दूसरी धारणा होती है आभ्यन्तर धारणा, मूलाधार चक्र, नाभि चक्र आदि–आदि स्थानों पर गुरुपदिष्ट मार्ग से धारणा का अभ्यास किया जाता है। धारणा का अभ्यास करते–करते साधक ध्यान की स्थिति में पहुँच जाता है। **'तत्र प्रत्ययेकतानता ध्यानम्'** अर्थात् लक्ष्य स्थान पर इष्ट का बराबर दीखते रहना एकतानता सदृश प्रवाह तैल की धारा के समान वृत्ति का जमा रहना ध्यान कहलाता है।

ध्यान की अवस्था में ध्याता अर्थात् ध्यान करने वाला ध्यान की प्रक्रिया तथा ध्येय (लक्ष्य) इन तीनों का ज्ञान रहता है। ध्यान का अभ्यास करते करते समाधि की अवस्था आ जाती है। समाधि का अर्थ **'तदेवार्थ मात्रनिर्भा सम स्वरूप शून्यमिव समाधि'**। अर्थात् जिसका हम ध्यानकर रहे हैं वही वही दीखता रहे अपना स्वरूप भी समाप्त जैसा हो जाये उसे समाधि करते हैं ! जैसे मान लिया हम गणेश जी का

ध्यान कर रहे हैं। ध्यान करते–करते जब समाधि अवस्था आ जायेगी तो उस अवस्था में हम अनुभव करेंगे **'गणपतिरहम्'** अर्थात् मैं ही गणपति हूँ **'शिवोऽहम्'** मैं ही शिव हूं। मैं ही शिव हूँ तथा स्थान–स्थान पर लोग मेरी पूजा अर्चना कर रहे हैं। धारणा ध्यान तथा समाधि ये तीनों सम्प्रज्ञात समाधि के अंग हैं। क्लिष्टाक्लिष्ट दोनों प्रकार की वृत्ति को ध्यान के द्वारा हटाया जा सकता है। ध्यानयोग का अभ्यास करने वाले के शरीर के जो भोग स्थूल शरीर पर आने वाले थे वह ध्यान के प्रभाव से सूक्ष्म में ही कट जाते है। इनमें कुछ ऐसे भी दृढ़ संस्कार होते हैं जो ध्यान में भी नहीं कट पाते। वह प्रतिप्रसव अर्थात् समाधि की पराकाष्ठा में ही कटते हैं। उसी स्थिति को प्राप्त हुये योगी के विषय में कहा जाता है–

भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

समाधि की पराकाष्ठा को पा जाने पर योगी के समस्त कर्म व संस्कारों का क्षय हो जाता है। पुनः कोई संस्कार फिर नहीं बनता। इसी को परावर दर्शन कहते हैं। अस्तु !

'ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः' के अन्तर्गत मैंने तुम्हें रामरती का उदाहरण दिया था। रामरती के विषय में तुम सब जानते ही हो। उसके जीवन में बहुत ही क्लिष्ट वृत्तियों का संस्कार चल रहा है। किन्तु आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की कृपा से उसकी सब क्लिष्ट वृत्तियाँ समाप्त हो गई। श्री प्रभु जी के शक्तिपात से उनका ध्यान योग में तत्काल प्रवेश हो गया और वह योगिनी बन गई। यद्यपि प्रभु जी ने उन्हें तत्व विजयी तो नहीं बनाया उसे बन वासिनी तो बना ही दिया। इसी प्रकार की एक और घटना श्री प्रभु जी के चरणों में घटित हुई थी। एक बार श्री प्रभु जी के पास अमृतसर से एक देवी लाई गई। वह किसी परपुरुष में परमासक्त थीं। उसके परिवार वालों ने श्री प्रभुजी से प्रार्थना की कि ऐसी कृपा करें इसका मन बदल जाये।

श्री प्रभु जी ने उससे पूछा– क्या तू भगवान श्री कृष्ण का ध्यान करेगी ? वह कहने लगी नहीं मुझे राम, कृष्ण आदि से क्या वास्ता। प्रभु जी ने कहा– तुझे सबसे अच्छा कौन लगता है ? उसने कहा– मुझे अपने प्रेमी अच्छे लगते हैं। श्री प्रभु जी ने कहा–अच्छा ! ठीक है तू अपने हृदय में उसी का ध्यान कर ! ऐसा कहकर प्रभु जी ने उसे उसी भक्ति के ध्यान में बिठा दिया। देखो। सबके हृदय में परमात्मा का वास है। ध्यान करते–करते उसे ऐसा लगा कि उसके प्रेमी बहुत ही सुन्दर रूप में दिखाई दे रहे हैं। एक दो दिन इसी प्रकार ध्यान करते हुये उसे लगा कि वह रूप भगवान कृष्ण के रूप में बदल गया है। इस प्रकार से उसे भगवान कृष्ण के दर्शन होने लगे तथा उनकी दिव्य लीलाओं का दर्शन प्रारम्भ हो गया। वह उन्हीं में तल्लीन रहने लगी। कुछ दिन के बाद श्री प्रभु जी ने उससे पूछा–देवी ! क्या तुम उस आदमी से अब भी प्यार करोगी ? वह कहने लगी– प्रभु जी। अब तो मैं उसको देखना भी नहीं चाहती हूँ। आपने मुझे वह वस्तु दे दी है जिसके आगे सारा संसार तुच्छ लगता है। इस प्रकार से पर पुरुष में आसक्त इस महिला का मन **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तयः'** के अनुसार ध्यान के प्रभाव से बिलकुल बदल गया। मैंने तुम्हें कई बार पहले बताया है कि जब मन के भीतर के दिव्य रस प्राप्त होने लगते हैं तो बाहर के संसार से उसका

मन स्वतः ही हटता चला जाता है। यह एक स्वाभाविक नियम की बात है। श्री प्रभु जी अपनी पद्धति के अनुसार अपने बच्चों को (साधकों) विचारानुगम समाधि के अन्तर्गत लोक लोकान्तर दिखा दिया करते थे ताकि स्वर्ग के भोगों के प्रति साधक की रुचि समाप्त हो जाये। एक बार श्री प्रभु जी ध्यान में आई गोपालानन्द जी को इन्द्रलोक ले गये। वहाँ अप्सराओं का नृत्य हो रहा था। ब्रह्मचारी जी नृत्य आदि देखने में रुचि लेने लगे। इतने में श्री प्रभु जी अन्तर्ध्यान हो गये। ब्र. गोपालानन्द जी कहने लगे– प्रभु जी ! आप कहाँ चले गये हैं। श्री प्रभु जी पुनः प्रकट होकर कहने लगे। तू इनमें मन लगा रहा था इसलिये हम अन्तर्धान हो गये। तू इन्हें देखने के लिये देख किन्तु मन मत लगा। **'ध्यान हेयास्तद्वृत्तय:'** के उदाहरण के रूप में साईदास और मंगामल का चरित्र सामने रख सकते है। साईदास के भी बहुत क्लिष्ट कर्म थे। बहुत ही बिगड़ा हुआ व्यक्ति था। शराब वह पीता था व्यभिचार तथा अन्य कई दुर्गुणों से बुरी तरह ग्रस्त था। उसकी माँ उसे श्री प्रभु जी के चरणों में लाई। श्री प्रभु जी की शक्तिपात को पाकर उसका ध्यान जमने लगा ! सारा–सारा दिन ध्यान में ही बैठा रहता था। इसी प्रकार से अमृतसर का रहने वाला मंगामल था। उसका भी उदाहरण मैं तुम्हें प्रायः बताता ही रहता हूँ। वह भी लाहौर की किसी महिला में आसक्त था। उस के संस्कार इस प्रकार के थे कि यदि वह उस महिला के कहने में आ जाता तो वह उससे पैसे व सामान लेकर जान से मार देती। किन्तु श्री प्रभु जी ने ठीक समय पर उसे सम्हाल लिया उसकी रक्षा हो गई। श्री प्रभु जी की शरणागति पाकर वह भी ध्यान योग में प्रवेश पा गया और जीवन उसका बिल्कुल बदल गया।

तुलसी दास, सूरदास, रसखान आदि भी काम प्रवृति के लोग थे। किन्तु प्रभु कृपा पाकर ध्यान योग के प्रभाव से इन सब का जीवन बदल गया ! भगवान के परम भक्तों में इनकी गिनती हो गई और अपने जीवन को धन्य बना दिया। उपनिषदों का लेख है **यदि शैल समं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्**

भिद्यते ध्यानयोगेन नान्य भेत्ता कदाचन्।

अर्थात् यदि पापों का पहाड़ का पहाड़ भी हो तो भी ध्यान योग के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। पाप को नष्ट करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। मैं तुम्हें ध्यान हेयास्तद्वृत्तय:' की बात समझाते हुए बता रहा था कि जब मनुष्य का मन अन्तर्मुखी हो जाता है तो संसार की दुष्प्रवृत्तियाँ छूटने लगती है देखो ! मनुष्य मल मूत्र से घृणा करता है उसे देखना भी नहीं चाहता किन्तु सूअर आदि का वह आहार होता है। इसी प्रकार से मनुष्य अन्न खाता–पीता है मल मूत्र का त्याग करता है इसलिये देवता लोग मनुष्यों को हीन भावना से देखते है अन्न जल खाने–पीने वाले मनुष्य को सिद्ध लोग हिमालय में रहने नहीं देते ! मनुष्य जब ध्यान योग से अन्दर के दिव्य दृश्यों को देखने लगता है तो संसार का बाह्य आकर्षण छूटने लगता है। भीतर के दृश्य हमें मुक्ति की ओर ले जाते है और बाहर के विषय पतन और मौत की ओर ले जाते है। इसलिये यदि तुम अपनी दुष्प्रवृत्ति एवं क्लिष्ट वृत्तियों को समाप्त करना चाहते हो तो ध्यान योग का अभ्यास करो। ध्यान में बैठने से वृत्तियाँ बदल जाया करती है। तुम्हें श्री प्रभु जी का मन्त्र मिला हुआ है। यदि संयतेन्द्रिय होकर ठीक प्रकार से जप व ध्यान किया जाये तो छः माह में ही सब कुछ मिल जायेगा।

* * *

विश्वेशार्क मयूख दीप्तिज तनुं श्रीरामलालप्रभुम्।
संसेव्यांतरसद्‌गुणै स्यहृदयैः भक्तिप्रभा भासुरैः
शिष्यान् तारयितुं निरंतर कृषिं यश्श्रम्यते-मे
मनस्तस्मिन् तिष्ठतु चन्द्रमोहन विभा श्री योगविधांबुधौ।।

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादकीय

योग साधना में विघ्न एवं उनकी निवृत्ति के उपाय

इससे पूर्व के अंक में भ्रान्ति दर्शन नामक विघ्न का वर्णन किया गया। अब इस लेख में इससे आगे के विघ्न का वर्णन करेंगे। इससे आगे आने वाले विघ्न का नाम है **अलब्धभूमिकत्व**। इसका तात्पर्य यह है कि योग साधना में लगे रहने पर भी योग भूमिकाओं को प्राप्त न करना। ऐसे बहुत से साधक मिलते हैं जो काफी देर तक बैठे रह सकते हैं किन्तु फिर भी उन्हें विशेष अनुभूति या लयता प्राप्त नहीं होती। महत्व बहुत देर तक बैठने का नहीं है बल्कि हमें यह देखना है कि हम किस तरीके से बैठते हैं। प्रायः कई साधक ध्यान में बैठे–बैठे थोड़ी ही देर में रीढ़ की हड्डी को झुका लेते हैं या उनकी गर्दन झुक जाती है। ऐसी स्थिति में उन्हें निद्रा घेर लेती है। गीता में भगवान ने ध्यान में बैठने की रीति को समझाते हुये **'समकायशिरोग्रीव'** का सिद्धान्त सामने रखा है। अर्थात् साधक को ध्यान में बैठते समय अपनी रीढ़ की हड्डी, गर्दन और सिर एक सीध में रखनी चाहिये। इस प्रकार बैठने का बहुत बड़ा विज्ञान है। इस प्रकार बैठने से प्राण की गति स्वाभाविक सुषुम्ना में रहेगी और प्राणों के संचालन में कोई अवरोध नहीं होता। इस प्रकार से प्राणों के चलते हुये सात्विकता के कारण निद्रा कभी आ नहीं सकती। प्राणों के ठीक प्रवाहित न होने पर तमोगुण के प्रभाव से निद्रा आती है।

मनुष्य को जब निद्रा आती है उस समय प्राणों के नाड़ी विशेष में संचालन रुक जाने पर शरीर से मन का सम्बन्ध टूट जाता है इस प्रकार हम निद्रा में चले जाते हैं। इसलिये यह आवश्यक हो जाता है कि साधक शरीर को सीधा रखें ताकि प्राण स्वाभाविक गति से प्रवाहित होता रहे। इस प्रकार कम से कम ढाई तीन घण्टे तक शरीर को स्थिर रख कर बैठने से शरीर की स्थिरता के साथ–साथ प्राणों की स्थिरता बनेगी। प्राण मन, बुद्धि की स्थिरता ही योग का लक्ष्य है। स्थिरता की चरमावस्था ही **'ब्रह्मतत्व'** है। इसीलिये उसे **कूटस्थ** कहा जाता है। शरीर की स्थिरता योग साधना का प्रथम सोपान है। शरीर की स्थिरता से प्राण स्वतः स्थिर होगा और जब प्राण स्थिर होगा मन स्वाभाविक ही स्थिर हो जायेगा। बहुत देर तक बैठे रहे किन्तु, हमारा मन सांसारिकता में ही घूमता रहा तो इससे हम उन्नति की ओर नहीं चल पाते। इसलिये साधक को देखना चाहिये कि ध्यानाभ्यास के समय उसकी वृत्ति या मन लक्ष्य स्थान से संयुक्त है या नहीं। मन यदि स्वच्छन्द घूमता रहा तो बहुत समय तक बैठने पर भी परिणाम सामने नहीं आयेगा और कोई भूमिका नहीं बन पायेगी।

तमोगुण जब मन को घेर लेता है तो उसका प्रभाव प्राण और शरीर पर भी देखा जा सकता है। तमोगुण छा जाने पर प्राण भारी चलते हैं। वैषयिक चिन्तन में प्राणों की गति बढ़ जाती है जो स्थिरता में बाधक बन जाता है। ध्यान में बैठते समय साधक को सर्वप्रथम नाड़ी शोधन या भस्त्रिका आदि प्राणायाम अवश्य कर

लेने चाहिये इससे प्राणवाही नाड़ियों में रक्त संचार ठीक रहता है और वह सजग काम करते हैं, तमोगुण दूर भाग जाता है मन सहज में एकाग्र होने लगता है। साधक को अपने आहार पर भी नियन्त्रण रखना चाहिये। हल्का आहार रखने से कोष्टबद्धता नहीं रहती। पेट साफ रहने पर वृति सूक्ष्म रहती है। आयुर्वेद का सिद्धान्त है **'आँत भारी तो माँथ भारी'** अर्थात् पेट भारी होने पर माथा भी भारी हो जाया करता है। सिर के भारीपन में मन एकाग्र नहीं हुआ करता। पेट हल्का व साफ रहने की स्थिति में ही साधक लम्बे समय तक आसन में बैठ सकता है। वह व्यक्ति बहुत बड़भागी है जो इस तमोगुण युक्त समय में भी कम से कम दो घण्टे एक साथ ध्यानाभ्यास में बैठ लेता है। ऐसे व्यक्ति के लिये कलियुग भी सतयुग ही होता है। सतयुग में हर व्यक्ति के जीवन में योग अभिन्न अंग बन कर रहता है। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में कहा है—कृतयोगी सब योगी विज्ञानी'। सतयुग में हर व्यक्ति योगी व विज्ञानी होता था। उस समय के लोगों में स्वाभाविक ही सात्विकी श्रद्धा थी इस कारण से उनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल एवं सूक्ष्म थी।

साधक को यदि साधना में उन्नति नहीं हो रही हो तो उसके कारणों पर विचार करना चाहिये। गुरुदेव से निवेदन करके सही दिशा निर्देश प्राप्त करना चाहिये। अपने से बड़े तथा वरिष्ठ गुरु भाईयों का भी सहयोग व मार्ग दर्शन लिया जा सकता है। साधक को अपने अनुभव को दूसरों को नहीं बताना चाहिये। अनुभवों को दूसरों के सामने प्रकट करने पर वह बन्द हो जाया करते हैं। सत्याचरण, सादा जीवन मनुष्य को उत्थान की ओर ले जाते हैं। मिथ्याचरण व बनावटी व्यवहार युक्त जीवन दुःखदायक होता है। अपनी साधना का ढिंढोरा पीटने से साधक का योग पथ अवश्य ही अवरुद्ध हो जाता है। योग साधना में मौन या मित भाषण बहुत आवश्यक है। विवेक चूड़ामणि में भगवान शंकराचार्य ने वाणी का निग्रह, द्रव्य का असंग्रह, लौकिक पदार्थों की आशा का त्याग एवं नित्य एकान्त सेवन को योग का प्रथम द्वार बताया है। साधक को अपनी साधना का मार्ग भी बदलते नहीं रहना चाहिये। जप और ध्यान के क्रम को बराबर जारी रखना चाहिये। मन्त्र जाप ही साधक को योग मार्ग में प्रवेश कराने का साधन है। राग और द्वेष साधक के मार्ग के दो प्रबल शत्रु हैं इससे साधक सदा आकर्षण—विकर्षण के जाल में फँसा रहता है। इसलिये साधक को इन दोनों को विष की भाँति समझ कर दूर से ही त्याग देना चाहिये।

अलब्धभूमिकत्व रूप विघ्न को दूर करने का एक ठोस उपाय यह है कि साधक—अपने गुरुधाम सिद्धपीठ से जुड़ा रहे। सिद्धों से सेवित स्थान पर उनके दिव्य परमाणु हजारों वर्ष तक विद्यमान रहा करते हैं। जो साधक उस सीमा क्षेत्र में आकर साधना करते हैं उन्हें अवश्य—अवश्य सहायता मिलती है। गुरुदेव के दिव्य तैजस परमाणु उस साधक के अल्प तेजस परमाणुओं को मिलाकर अपने में मिला लेंगे। इससे साधक का मन तो एकाग्र होता ही है किन्तु गुरुदेव का दिव्य ज्ञान भी उसके अन्तः करण में प्रस्फुटित होने लगता है। गुरुमूर्ति का ध्यान भी सफल विघ्नों को दूर करने का एकमात्र साधन है।

यदि साधक उपर्युक्त बिन्दुओं पर विचार कर अपनी साधना को आगे बढ़ाता है तो वह अवश्य ही गुरुदेव की कृपा का भाजन बन जाता है। उससे उसे वह निधि मिल जाती है, जो कथमपि मनुष्य के पुरुषार्थ से लभ्य नहीं होती।

* * *

आत्मा का रहस्य एवं यम–नचिकेता संवाद

पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री

कठोपनिषद् में योगजिज्ञासु नचिकेता और आचार्य यम के संवाद के रूप में परमेश्वर के रहस्यमय तत्व का विशद वर्णन किया गया है।

बालक नचिकेता गौतम वंशीय उद्दालक ऋषि का पुत्र था। एक बार उद्दालक ऋषि ने विश्वजित नामक महान यज्ञ किया और उस यज्ञ में उन्होंने अपना सारा धन ऋषियों को दान में दे दिया, किन्तु ब्राह्मणों को जो गौएँ दान में दी गई उनमें कुछ बूढ़ी थीं और कुछ दूध देने योग्य नहीं थी। यह देखकर बालक नचिकेता को बड़ा दुःख एवं आश्चर्य हुआ। उसने मन ही मन विचार किया–"पिता जी को इस यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर देना चाहिये था, किन्तु उन्होंने मेरा दान नहीं किया, प्रत्युत उपयोगी गौओं को भी मेरे निमित्त रख लिया। उन्होंने जो गौएँ दान की हैं वे किसी काम की नहीं हैं"। उसने पिता को सावधान करते हुए निवेदन किया–

"पिता जी आप मुझे किसे देंगे" ?

पिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। बालक ने दुबारा पूछा, तब भी उसे उत्तर नहीं मिला। तीसरी बार उसने फिर वही प्रश्न किया तो उसके पिता को क्रोध आ गया। वे अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले– "तुझे मृत्यु को दूँगा"।

तब पिता की आज्ञा से बालक नचिकेता यमपुरी चला गया। वहाँ यमराज कहीं बाहर गये हुये थे। अतः बालक नचिकेता अन्न–जल ग्रहण किये बिना ही तीन दिन तक यमराज के आगमन की प्रतीक्षा करता रहा।

जब यमराज आये और उन्हें पता चला कि यह बालक तीन दिन से अनशन किये हुए मेरी प्रतीक्षा में द्वार पर पड़ा है तो उन्होंने उसका बड़ा स्वागत किया। उन्होंने बालक की कर्त्तव्य–निष्ठा, सत्यपरायणता तथा निर्भीकता आदि गुणों को देखकर प्रसन्न होकर उससे तीन वर माँगने को कहा। इस पर नचिकेता ने यमराज से प्रार्थना की–

हे मृत्यु देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं तीनों वरों में से पहला वर यह माँगता हूँ कि मेरे पिता उद्दालक जिन्होंने क्रोध के आवेग में मुझे आपके पास भेज दिया और अब अत्यन्त दुःखी एवं अशान्त हो रहे हैं वे आपके वरदान से मेरे प्रति क्रोध रहित, शान्त तथा सन्तुष्ट हो जायें और जब आपकी आज्ञा से मैं घर जाऊँ तब वे मुझे अपने पुत्र के रूप में पहचान कर मुझसे पूर्ववत् व्यवहार करें।

यमराज से इस वर की स्वीकृति पाकर नचिकेता ने दूसरे वर में स्वर्गलोक दिलाने वाली अग्निविद्या का उसे उपदेश करने की प्रार्थना की। यमराज ने यह वर भी उसे दे दिया।

इस लोक के कल्याण के लिये पिता की सन्तुष्टि का वर और परलोक के कल्याण के लिये स्वर्ग प्राप्ति का साधन अग्निविज्ञान का वर पाकर अब तीसरे वर में नचिकेता ने ब्रह्मवेत्ता आचार्य यम से आत्मा का यथार्थ स्वरूप और उसकी प्राप्ति का उपाय बताने की प्रार्थना की, किन्तु यमराज ने उसकी इस प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए कहा—

हे नचिकेता यह आत्मतत्व बहुत ही सूक्ष्म विषय है। यह सहज में समझ में आने वाला नहीं है। इसे तो देवता लोग भी नहीं समझ सके। तुम बालक इसे क्या समझ पाओगे। अतः तुम इसे छोड़कर इसके बदले कोई दूसरा वर माँग लो।

नचिकेता अपनी बात पर दृढ़ रहा। तब उसकी परीक्षा के लिये यम ने पहले उसे पृथ्वी लोक के समस्त भोगों का प्रलोभन दिया, फिर स्वर्गीय भोगों का वर्णन करते हुए उनका वरण करने को कहा। किन्तु नचिकेता ने उन समस्त भोगों को ठुकराते हुए कहा—

न वित्तेल तर्पणीयो मनुष्यो,
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वां।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वंम्,
वरस्तु में वरणीय स एव।। (१/१/२७)

हे मृत्युदेवता ! आप जानते ही है कि धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। आपके दर्शन पा लेने के फलस्वरूप अब मुझे जीवन यापन के लिये आवश्यक धन स्वतः प्राप्त हो जायेगा। जब तक आपका शासन रहेगा तब तक हम जीते भी अवश्य रहेंगे। इसलिये मेरे माँगने योग्य वर तो वह आत्मतत्व ही है।

इस प्रकार भलीभाँति परीक्षा करके यमराज को जब यह विश्वास हो गया कि नचिकेता परम वैराग्यवान एवं दृढ़निश्चयी है तो उसे ब्रह्मविद्या का उत्तम अधिकारी जानकर उन्होंने उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। आत्मतत्व की दुर्लभता एवं गहनता का वर्णन करते हुए आचार्य यम अपना उपदेश आरम्भ करते है—

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः,
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा,
ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलाऽनुशिष्टः।। (१/२/७)

जो आत्मतत्व बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलता और जिसको बहुत से लोग सुनकर भी समझ नहीं पाते, ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्व का वर्णन करने वाले महापुरुष आश्चर्यमय है, उसे प्राप्त करने वालों में भी कोई विरला ही बुद्धिमान साधक ऐसा होता है जिसने आत्मतत्व को पाकर अपना जीवन सफल बना लिया हो। तत्वदर्शी ज्ञानी महापुरुषों से उपदेश प्राप्त करके उसके अनुसार मनन निदिध्यासन करते-करते तत्व का साक्षात्कार करने वाले पुरुष तो जगत में अत्यन्त दुर्लभ है।

अर्थात्—आत्मतत्व के सुनने वाले, सुनकर उस पर आचरण करने वाले, उसका यथार्थ वर्णन करने वाले और उसे तत्व से जानने वाले महापुरुष इस संसार में विरले ही है।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष,
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानो।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति,
अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।। (१/२/८)

यह आत्मतत्व इतना गहन है कि जब तक अन्तर्द्रष्टा महापुरुष अपने अनुभव के आधार पर इस विषय को नहीं समझाते तब तक मनुष्य का इस विद्या में प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि साधारण ज्ञान वाला कोई मनुष्य यदि इस विषय को बतलाता है और उसके अनुसार यदि कोई साधक इस पर चिन्तन करता है तो यह विषय उसकी समझ में बिल्कुल नहीं आता। ज्ञानी महापुरुषों से सुने बिना अपने आप तर्क—वितर्क करते रहने से भी यह आत्मतत्व समझ में नहीं आता। क्योंकि यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और तर्क से सर्वथा अतीत है।

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा,
विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये।। (१/२/१३)

मनुष्य को चाहिये कि वह इस धर्ममय उपदेश को पहले तो अनुभवी महापुरुष से श्रद्धापूर्वक सुने और सुनकर उसका मनन करे और फिर एकान्त में उस पर विवेकपूर्वक विचार करते हुए उसे अपने चिन्तन का विषय बनाये।

अभ्यास करते हुए जब साधक इस आत्मतत्व को अनुभव कर लेता है तब वह आनन्द स्वरूप परब्रह्म परमात्मा को पाकर आनन्द में ही मग्न हो जाता है। नचिकेता की प्रशंसा करते हुए वे आगे कह रहे है— हे नचिकेता ! तुम जैसे परम विरक्त एवं निष्ठावान साधक के लिये तो मैं परमधाम का दरवाजा खुला हुआ समझता हूँ।

आचार्य यमराज से आत्मतत्व की दुर्लभता सुनकर तथा अपने को उसका अधिकारी जानकर नचिकेता के मन में परमात्म तत्व की जिज्ञासा तीव्र हो गई और उसने यमराज से पुनः निवेदन किया—

हे भगवान ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो धर्म—अधर्म के सम्बन्ध से रहित, कार्यकारण रूप प्रकृति से पृथक् एवं भूत, वर्तमान एवं भविष्यत इन सबसे भिन्न जिस परमात्म तत्व को आप जानते है वह मुझे बताने की कृपा करें।

तब बालक नचिकेता की तीव्र जिज्ञासा एवं समर्पण भाव को देखते हुए यमराज परमात्व तत्व का वर्णन करते है—

अणोरणीयान्महतो महीयाना

त्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतु: पश्यति वीतशोको

धातुप्रसादान्महिमानमात्मन:। (१/२/२०)

हे नचिकेता ! वे परब्रह्म परमात्मा सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म और महान से भी महान है। वे सर्वव्यापी होते हुए भी इस जीवात्मा के हृदय रूपी गुफा में निवास किया करते हैं। परमात्मा की उस महिमा को कामना रहित और चिन्ता रहित कोई विरला ही साधक उस परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,

न मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्य

स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।। (१/२/२३)

ये परमात्मा न तो उन लोगों को मिलते हैं जो शास्त्रों को पढ़ सुनकर अपने को ज्ञानी समझते हुए दूसरो को प्रभावित करने के उद्देश्य से उस परमात्मा तत्व का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं, न उन तर्कशील बुद्धिमानों को मिलते हैं जो परमात्मा को विषय में बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वे तो केवल उसी के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते है। वे स्वीकार उसी को करते हैं जो अपनी बुद्धि या साधना पर निर्भर न रहकर उनकी कृपा की ही प्रतीक्षा करता रहता है। ऐसे साधक पर वे भक्त वत्सल कृपा किया करते हैं और अपनी योगमाया का परदा हटाकर अपना यथार्थ स्वरूप उसके सामने प्रकट कर देते हैं।

उपरोक्त मन्त्रों में परब्रह्म परमेश्वर की महिमा का वर्णन किया गया तथा यह बतलाया गया कि वे परमात्मा किसे प्राप्त होते हैं। अब यह बतलाया जा रहा है कि सच्चिदानन्दन परमात्मा किन साधनों से प्राप्त किये जा सकते हैं। यहाँ रथ और रथी का दृष्टान्त देकर योगवेत्ता यमराम मनोनिग्रह पर बल देते हुए कह रहे हैं–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च।। (१/३/३)

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान ।

आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिण:।। (१/३/४)

हे नचिकेता ! जीवात्मा को तो तुम रथ का सवार समझो, शरीर को रथ समझो, बुद्धि को रथ का हाँकने वाला सारथी समझो और मन को लगाम समझो।

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ उस रथ को खींचने वाले घोड़े है और सांसारिक विषय उन घोड़ों

के विचरने का मार्ग है तथा शरीर, इन्द्रिय और मन इन सबके साथ रहने वाला जीवात्मा ही उन विषयों का भोक्ता है।

यस्त्वविज्ञानवान भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथे:।। (१/३/५)

जो व्यक्ति विवेकहीन बुद्धिवाला और चंचल मन वाला होता है उसकी इन्द्रियाँ असावधान सारथी के दुष्ट घोड़ों की भाँति वश में न रहने वाली हो जाती हैं। इसके विपरीत–

यस्तु विज्ञानवान भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्योन्द्रियाणि वश्वानि सदश्वा इव सारथे:। (१/३/६)

जो व्यक्ति विवेकयुक्त बुद्धि वाला होता है और अपने वश में किये हुए मन से अपनी इन्द्रियों को निरन्तर सन्मार्ग में चलाने की चेष्टा करता रहता है उसकी इन्द्रियाँ सावधान सारथी के श्रेष्ठ घोड़ों की भाँति सदा उसके वश में रहती हैं।

यद्यपि रथ को घोड़े ही खींचते हैं परन्तु उन घोड़ों को सही मार्ग पर चलाना लगाम हाथ में थामे बुद्धिमान सारथी का काम है। इन्द्रिय रूपी बलवान घोड़े स्वाभाविक ही विषयों से भरे संसार रूपी चरागाह की ओर दौड़ना चाहते हैं, परन्तु यदि बुद्धिरूपी सारथी मन रूपी लगाम को खींचकर उन्हें वश में कर लेता है तो फिर वे कहीं नहीं जा सकते। इस प्रकार मन के वश में हो जाने से इन्द्रियाँ स्वत: ही वश में हो जाती हैं।

इन्द्रियेभ्य: परा: ह्यर्था: ह्यर्थेभ्यश्च परंमन:।
मनसस्तु परा बुद्धि: बुद्धेरात्मा महान पर:।। (१/३/१०)

महत: परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुष: पर:।
पुरुषान्नपरं किंचित्सा काष्ठा सा परा गति:।। (१/३/११)

इन्द्रियों से शब्दादि विषय बलवान हैं। वे साधक की इन्द्रियों को बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। अत: साधक को चाहिये कि वह इन्द्रियों को विषयों से दूर रखे। विषयों से बलवान मन है। यदि मन विषयों के चिन्तन से हट जाय तो इन्द्रियाँ और विषय साधक की कुछ भी हानि नहीं कर सकते। मन से भी बुद्धि बलवान है। अत: बुद्धि की सहायता से अर्थात् बुद्धि द्वारा विचार करके मन को राग–द्वेष से रहित बनाकर उसे अपने वश में कर लेना चाहिये। बुद्धि से भी इन सबका स्वामी आत्मा बलवान है।

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन सब पर आत्मा का अधिकार है, किन्तु इस आत्मा से भी बलवान एक और तत्व है– ईश्वर की अव्यक्त मायाशक्ति। उसे ही प्रकृति कहा गया है। उसे हटाना जीव के वश की बात नहीं है। अत: इससे भी बलवान जो सबके स्वामी, सबकी परम अवधि, सर्वाधार परम पुरुष परमेश्वर हैं उन्हीं की शरण लेनी चाहिये।

ईश्वर के शरणागत होकर उसकी प्राप्ति के लिये किस प्रकार साधना करनी चाहिये। इस जिज्ञासा पर

प्रस्तुत मन्त्र में धारणा–ध्यान की विधि बतलाई जा रही है–

यच्छेद्वाङ् मनसीप्राज्ञस्तधच्छेज्ज्ञानमात्मनि।

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तधच्छेच्छान्तमात्मनि।। (१/३/१३)

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि वह पहले तो अपनी वाणी आदि समस्त इन्द्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन में विलीन कर दे। अर्थात् मन में विषयों की स्फुरणा न रहे। जब यह क्रिया भलीभाँति होने लगे तो मन को ज्ञानस्वरूप बुद्धि में विलीन कर दे। अर्थात् एकमात्र विज्ञानस्वरूप निश्चयात्मिका बुद्धि की वृत्ति के सिवा मन की भिन्न सत्ता न रहे। उसके बाद ज्ञानस्वरूप बुद्धि को भी जीवात्मा के शुद्ध स्वरूप में विलीन कर दे। अर्थात् ऐसी स्थिति हो जाये जहाँ एकमात्र आत्मतत्व के सिवा अपने से भिन्न किसी भी वस्तु की सत्ता ही अनुभव में न आये। इसके पश्चात् अपने आपको भी शान्त स्वरूप परमात्मा में विलीन कर दे।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तमाहुः परमां गतिम्।। (२/३/१०)

तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।

अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ। (२/३/११)

उपरोक्त प्रकार से योग धारणा के द्वारा जब मनसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भलीभाँति स्थिर हो जाती है। और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती उस स्थिति को योगीजन योग की सर्वोत्तम स्थिति बतलाते हैं।

इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का नाम ही योग अर्थात् समाधि है— ऐसा अनुभवी योगाचार्यों का मत है। क्योंकि उस समय साधक विषयदर्शन रूप प्रमाद से रहित हो जाता है। यह योग उदय और अस्त होने वाला है। अतः कल्याणकामी व्यक्ति को निरन्तर योगयुक्त रहने का दृढ़ अभ्यास करते रहना चाहिये।

शरीर छूट जाने के बाद जीवात्मा की क्या गति होती है ? नचिकेता के इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य यम कहते हैं–

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय योगिनः।

स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्।। (२/२/७)

यमराज कहते हैं कि शरीर त्यागने के बाद जीवात्मा अपने कर्मों और वासनाओं के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार की गति को प्राप्त करता है। जिसके जैसे कर्म होते हैं और शास्त्रादि को पढ़–सुनकर तथा अच्छी–बुरी संगति से जिसके जैसे भाव अन्तकाल में बने होते है उसी के अनुसार मरने के बाद कितने ही जीवात्मा को दूसरा शरीर धारण करने के लिये नाना प्रकार की जंगम योनियों को प्राप्त हो जाते है और उनमें जिनके पुण्य–पाप समान होते हैं वे मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं, जिनके पास कर्म अधिक होते हैं वे पशु–पक्षी का शरीर धारण करते है और जिनके घोर पापकर्म होते हैं वे वृक्ष, लता आदि जड़ शरीर में उत्पन्न होते है।

जीवात्मा की अन्तिम गति बतलाकर यमराज अब परमात्मा का स्वरूप और भी अधिक स्पष्टीकरण के साथ समझाते हैं :—

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते॥
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वैतद॥ (२/२/८)

जीवात्माओं के कर्मानुसार उनके लिये नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करने वाला जो यह परम पुरुष परमेश्वर प्रलयकाल में सब जीवों के सो जाने पर भी अपनी महिमा में नित्य जगता रहता है वही परम विशुद्ध तत्व है, वही पर ब्रह्म है, उसी को अमृत स्वरूप परमानन्द कहा जाता है। ये समस्त लोक उसी में आश्रय पाये हुए हैं। उसके नियमों का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। हे नचिकेता। यही हैं वह परमात्मा जिसके विषय में तुमने पूछा था।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु—
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्य दोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्य॥ (२/२/११)

जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य देवता है। उस प्रकाश की सहायता से ही लोग नाना प्रकार के कर्म करते हैं, परन्तु सूर्य उन नेत्रों द्वारा किये जाने वाले बाह्य कर्म—रूप दोषों से लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार सब प्राणियों के अन्तर्यामी एक परब्रह्म परमात्मा है। उन्हीं की शक्ति से मनुष्य इन्द्रियों द्वारा शुभाशुभ कर्म करते हैं और उनका सुख दुःख रूप फल भोगते हैं किन्तु वे परमेश्वर उनके दुःखों से लिप्त नहीं होते। वे सबमें रहते हुए भी सबसे पृथक हैं।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ (२/२/९)

जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में निराकार रूप से व्याप्त एक ही अग्नि प्रज्वलित होने पर नाना रूपों में उनके समान आकार वाला बन जाता है। वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परमेश्वर एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के समान रूप वाला हो रहा है और बाहर भी वही है। उन परमेश्वर की महत्ता इतनी ही नहीं इससे कहीं अधिक है।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा,
एकं रूपं बहुधा यः करोति।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा–

स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।। (२/२/१२)

जो परमात्मा सबके अन्तर्यामी है, जो अद्वितीय एवं सबको वश में रखने वाले हैं वे ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर अपने एक ही रूप को अपनी लीला से बहुत प्रकार का बना लेते हैं। जो ज्ञानी पुरुष उन्हें निरन्तर अपने अन्दर स्थित देखते है उन्हीं को ही सदा रहने वाला सुख मिलता है दूसरों को नहीं।

यमराज के मुख से परमेश्वर की विलक्षण महिमा को सुनकर नचिकेता मन ही मन विचार करने लगा कि उस परमानन्द स्वरूप परमेश्वर को मैं किस प्रकार से जानूं ? क्या वे परमात्मा प्रकाशित होते है या अनुभव में आते है ?

बालक के मनोभावों को जानकर यमराज पुनः कहते है–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्,

नेमाः विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,

तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।। (२/२/१५)

हे नचिकेता ! उस प्रकाश पुञ्ज परमात्मा के समीप न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा और तारागण प्रकाशित होते हैं और न ये बिजलियाँ ही प्रकाश देती है। फिर यह लौकिक अग्नि तो प्रकाशित ही कैसे हो सकती है। क्योंकि– उस परमात्मा के प्रकाश से ही सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आदि सभी प्रकाशित होते हैं। जिस प्रकार सुर्य के प्रकाश में दीपक का प्रकाश लुप्त हो जाता है उसी प्रकार उस अनन्त प्रकाश पुंज के सामने सूर्य का प्रकाश अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत उस परमेश्वर के प्रकाश के एक अंश से प्रकाशित हो रहा है।

भयादस्याग्निस्तपति भयात तपति सूर्यः।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः। (२/३/३)

इसी परब्रह्म के भय से अग्नि तपता है, इसी के भय से सूर्य तपता है और इसी के भय से इन्द्र, वायु और मृत्यु देवता ये सब दौड़ दौड़कर अत्यन्त सावधानी से अपने काम में लगे हुये हैं।

इस प्रकार परमात्मा तत्व के रहस्यमय उपदेश को सुनकर नचिकेता यमराज द्वारा बतलाई हुई इस ब्रह्मविद्या को और सम्पूर्ण योगविधि को जानकर जन्म–मृत्यु के बन्धन से रहित और सब विकारों से शून्य होकर परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त हो गया। दूसरा भी जो कोई इस अध्यात्म विद्या को इसी प्रकार जान लेता है वह भी नचिकेता की भाँति जन्म–मृत्यु से रहित और सब विकारों से रहित होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

* * *

प्राणोपासना, प्राणयज्ञ तथा प्राणायाम-२

प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा

प्राणों का स्थैर्य, मन का स्थैर्य तथा शरीर का स्थैर्य प्राणोपासना के मुख्य अंग है। आसन का दृढ़ अभ्यास होने पर शरीर स्थैर्य होता है जिससे शरीरगत व्याधियाँ दूर हो जाती है। **'आसनेन रूजं हन्ति, प्राणायामेन पातकम्। 'धारणाभि: विल्विषं** ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।।' आसन सिद्धि के पश्चात् प्राणायाम के द्वारा मन और प्राण का स्थैर्य साध्य है। प्राण के निरोध से चित्त का निरोध और चित्त के निरोध से प्राण का निरोध होता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था में प्राण और चित्त पृथक–पृथक प्रतीत होते है, किन्तु तुरीयावस्था में दोनों एक हो जाते है। प्राणशक्ति क्रियारूप है और चित्त ज्ञानरूप है। शिवसूत्र २९ में तथा २२ में प्राण और चित्त को एक साथ लय करने का निर्देश है। **'प्राण समाचारे समदर्शनम्'** अर्थात् चित्त और प्राण दोनों का साथ–साथ निरोध करने से समता की प्राप्ति द्वारा विश्व में समदर्शिता प्राप्त होती है।

प्राणोपासना का साधन प्राणायाम है। इसके दो प्रकार है— **स्थूल** और **सूक्ष्म** अथवा **बाह्य** तथा **आभ्यन्तर** अथवा **पूर्ववाही वायुगतिक** तथा **पश्चिमवाही प्राणगतिक** अथवा **सगर्भ** तथा **अगर्भ, साधन प्राणायाम** तथा **सिद्ध प्राणायाम** अथवा **प्रयत्न सापेक्ष** तथा **सहज** या **शक्तिपात जन्य प्राणायाम। प्राण के नियमन को प्राणायाम कहा जाता है।** श्वास--प्रश्वास की गति को नियंत्रित करने का अभ्यास विभिन प्रकार के प्राणायामों के द्वारा किया जाता है। **अष्टविध** या **शतविध** प्राणायामों का फल नाड़ी शुद्धि तथा कुण्डलिनी जागरण है। यह हठयोग का प्रमुख साधन है। प्राणायाम श्वास–प्रश्वास की गति को स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतम, सूक्ष्मतम करते हुए चेतन आत्मा में प्राणों को लय करने पर्यन्त किया जाता है। चित्त और मन की एकाग्रता प्राणायाम के द्वारा शीघ्र होती है। प्राणायाम में श्वास–प्रश्वास की गति का क्रम बदल दिया जाता है। महर्षि पतंजलि ने इसका लक्षण, किया है— **'तस्मिन्** सति श्वास–प्रश्वासयोर्गति **विच्छेद: प्राणायाम:।**

आसन सिद्ध होने पर (नाड़ी शुद्धि अनन्तर) श्वास–प्रश्वास की गति पर नियन्त्रण करना प्राणायाम को सामान्य लक्षण है। जैसे जीवमात्र श्वास लेते और छोड़ते है किन्तु मनुष्य ही एकमात्र ऐसा जीव है जो अपने विवेक और बुद्धि बल से पुरुषार्थ द्वारा इड़ा–पिंगला में प्रवाहित होने वाली वक्रगति की श्वास–प्रश्वास का सुषुम्ना वाही कर सरलगति में बदल सकता है। जिसके फलस्वरूप अपने समस्त कर्मविपाक, संस्कार संचय विधान में विपर्यय करने की क्षमता विकसित कर सकता है। आत्मज्ञान का पथ प्राणों का पश्चिमवाही होकर वक्रगति से सरलगति में होने पर प्रशस्त हो जाता है। मनुष्य की जीवनी शक्ति और आयु श्वासों पर निर्भर

है। दिन–रात में सामान्य रूप से २१६०० श्वास–प्रश्वासों की संख्या मानी गयी है। यदि किन्हीं उपायों से उनको जितनी मात्रा में कम से कम कर सकें तो उतनी ही मात्रा में हमारी आयु और जीवनी शक्ति (Vitality) में वृद्धि हो सकती है। भयंकर रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों को विविध प्राणायामों की क्रियाओं से नियमित अभ्यास कराया जाय तो निश्चित रूप से उनके अन्दर रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होगा।

योगाभ्यास के बिना सामान्य स्थिति में प्राण और अपान की गति विपरीत दिशा में होती है। प्राण अपान को और अपान प्राण को निरन्तर खींचता है। दोनों का एक दूसरे के बिना काम नहीं चलता। इसीलिए मन चंचल बना रहता है। जब तक दोनों में अविरुद्ध साम्यभाव प्रतिष्ठित नहीं होता तब तक जीवन की ऊर्ध्वगति तथा शान्ति प्राप्त नहीं होती। जीवन का उत्थान पतन चलता रहता है। योग साधक प्राणायाम द्वारा दोनों में साम्य स्थापित कर संसार सागर से पार हो जाता है। जैसा कि गीता में कहा गया है–

इहैव तैर्जितः सर्गः येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषंहि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

प्राणगति की साम्यावस्था से संसार के सुख–दुःख साधक को प्रभावित नहीं करते तथा निर्दोष होकर सम लक्षण युक्त ब्रह्म में वह स्थित हो जाता है।

श्वास–प्रश्वास की गति दो दिशाओं में होती है– एक देशगत और दूसरी कालगत। बाहर और अन्दर की गति को **रेचक, पूरक** तथा **कुम्भक** नाम से कहा जाता है। साधारण अवस्था में नासिका छिन्द्रों से वायु की बाहर की ओर गति बारह अंगुल होती है। अलग–अलग प्रकृति के मनुष्यों में तथा रोग, शोक, क्रोध की दशा में इसमें अधिकता या कमी भी हो जाती है। जैसे भोजन और बोलने में गति छः से बारह अंगुल पर्यन्त, चलने में १२ अंगुल से ३६ अंगुल तक दौड़ने में ४२ अंगुल तक तथा स्त्री प्रसंग में ५२ से ६३ अंगुल तक श्वास प्रश्वासगति बढ़ जाती है। जिसका परिणाम श्वासभारिता प्राणकोष का शीघ्रक्षय होता है। प्राणवायु की गति का विस्तार जितना अधिक होगा, बहिर्मुखता और कालगत प्रभाव भी उतनी मात्रा में अधिक होगा। यम–नियम के अभ्यास से शनैः शनैः इस बाह्य गति का ह्रास होने लगता है। काल गत श्वास की गति में भी इसी प्रकार का वैषम्य विद्यमान रहता है। औसतन **श्वास–प्रश्वास** एक मिनट में १५ होती है। प्रकृति भेद तथा आगन्तुक कारणों से इसमें अन्तर आ जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से बाह्यगति के घट जाने पर श्वास–प्रश्वासों की संख्या भी कम हो जाती है। बाह्यगति एक अंगुल कम होने पर संख्या $१\frac{१}{४}$ कम, दो अंगुल कम होने पर संख्या $२\frac{१}{२}$ कम। अन्ततोगत्वा जब बाह्यगति बारह अंगुल शून्य हो जाती है तो संख्या भी शून्य स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। यही प्राणों की सूक्ष्म अवस्थापन्न दशा है, जिसे पातंजलि योगदर्शन के सूत्र २/५० '**बाह्याभ्यन्तर स्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः**' द्वारा वर्णित किया गया है। श्वास की शून्यवृत्ति, स्तम्भ वृत्ति तथा कुम्भक स्थिति है। प्राणों की बाह्यगति और संख्या में न्यूनता आने के साथ अनेकों प्रकार की अलौकिक शक्तियों का विकास होने लगता है। वाक् सिद्धि, दूरदृष्टि, दूर श्रवण, आकाश गमन आदि सिद्धियां प्राणायाम का ही फल है।

महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के तीन भेद किये हैं— रेचक, पूरक, कुम्भक। कुम्भक प्रारम्भ के ही दो भेद हैं— बाह्य कुम्भक और आभ्यन्तर कुम्भक। स्तम्भवृत्ति कुम्भक भी एक भेद है। इसमें श्वास की गति को जहाँ का तहाँ रोक देना होता है। एक अन्य प्राणायाम केवल कुम्भक प्राणायाम है जिसमें किसी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं होता बल्कि यह जागृत कुण्डलिनी की शक्ति से स्वत: होता है। प्रयत्न द्वारा किये गये प्राणायाम में किसी प्रकार की त्रुटि हो जाने पर शारीरिक अथवा मानसिक विकार की सम्भावना हो सकती है। इसलिए किसी अनुभवी गुरु की देखरेख में ही इन्हें करना उचित होता है। दूसरे प्रकार के स्वत: होने वाले प्राणायाम समर्थगुरुदेव के शक्तिपात से शरीर की सामर्थ्य एवं आवश्यकतानुसार स्वत: होते हैं। प्रथम प्रकार से प्राणायाम करने पर चित्त में संस्कार बाहर से संचित होते हैं। किन्तु कुण्डलिनी जागृति शक्तिपात के अनन्तर स्वत: होने वाली क्रियायें अन्दर के संस्कारों का बाहर निकलना प्रारम्भ हो जाता है। जिससे कर्माशय क्षीण होने लगता है।

सहित एवं केवल कुम्भक सोत्कर्ष एवं सापकर्ष भेद से दो प्रकार का है

(१) सोत्कर्ष—कुम्भक में प्राण और अपान पर नियन्त्रण रखा जाता है। अपानवायु को रोककर यह सिद्ध होता है। शनै:शनै प्राण और अपान को रोककर दोनों का रेचन किया जाता है।

(२) सापकर्ष कुम्भक— इसमें अपान वायु को रोकना अपेक्षित नहीं है। केवल प्राणवायु से कुम्भक प्राणायाम किया जाता है। इस कुम्भक का अभ्यास सोत्कर्ष से पहले करना चाहिये। योगपद्मासन लगाकर इसे करने से मल का शोधन होता है।

(१) रेचित कुम्भक—रेचित वायु को बाहर ही रोककर रखना, पूरक न करना। यह सुख देने वाला प्राणायाम है।

(२) पूरित कुम्भक—में उदर में पूरित वायु को रोककर अपेक्षित काल पश्चात् रेचन करने से नाड़ी शुद्धि होती है।

(३) शान्त कुम्भक— में शरीर के अन्दर बाहर प्राणवायु की व्याप्ति मन की कल्पना और संकल्प से की जाती है।

(४) प्रत्याहार कुम्भक—में पादतल, गुल्फ, नाभि–हृदय, उदर, कण्ठ, टेटुआ–(घण्टिका), भ्रूमध्य, ललाट तथा ब्रह्म रन्ध्र के मध्य वायु को स्तम्भित किया जाता है।

(५) उत्तर कुम्भक—में हृदयादि ऊर्ध्व प्रदेशों में प्राणवायु का क्रमिक स्तम्भक किया जाता है। (आपूरयेत् क्रमादूर्ध्वमूर्ध्वं रोधो हृदयादिषु)

(६) अधरकुम्भक— में मूर्द्धा से नीचे–नीचे के स्थानों में वायु को स्तम्भित किया जाता है। (अधोऽधोमूर्द्धतोऽधर: (यो.सि. च. ९४)

(७) समकुम्भक— में रेचक पूरक न कर मन की भावना द्वारा वायु को सिर से नाभि, हृदय पर्यन्त व्याप्त किया जाता है—

रेचनापूरणे त्यक्त्वा मनसा मरुतो धृतिः।
या नाभ्यादि प्रदेशेषु समः कुम्भः प्रकीर्त्तितः।। वही ९४

विशेष—प्राणायाम क्रम में मूल बन्ध, उड्डियान बन्ध और जालन्धर बन्धका विशेष महत्व है। क्योंकि मूलाधार, नाभि और कण्ठ इन तीन स्थानों में प्राणों की शक्ति विशेष रूप से निवास करती है। यही त्रिपुरा शक्ति है जो स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीर में व्याप्त होकर स्थित है। अतः रेचक करते समय मूलबन्ध (गुदा का संकोचन) तथा उड्डियान बन्ध (नाभि और पेट को रीढ़ की हड्डी की ओर पीछे खींचकर रखना) लगाना चाहिये। तथा पूरक के बाद कुम्भक में चिबुक को कण्ठकूप में लगाकर मूल बन्ध लगाने से वायु सभी नाड़ियों में व्याप्त हो जाती है और फेफड़े तथा मस्तिष्क क्रियाशील हो जाते है।

उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त योगाचार्यों ने विविध प्रकार के अन्य प्राणायामों का वर्णन किया है। जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं—

रेचक प्राणायाम में—शनैः शनैः उदरस्थ वायु को एक नासापुट बन्द कर दूसरे से बाहर निकालना होता है। पूरक प्राणायाम में नासिका पुट के बहिस्थ वायु को शनैःशनैः भीतर की ओर खींचकर समस्त नाड़ियों में व्याप्त करना होता है। कुम्भक प्राणायाम में शरीर को निश्चल रखकर श्वास–प्रश्वास रहित प्राण को स्थिति रखना होता है। नारायणतीर्थ के अनुसार सहित कुम्भक के आठ भेद हैं— सूर्य भेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा मुख्य सहित।

सूर्यभेदन—मृगचर्म अथवा ऊन के आसन पर सम अवस्था में आसीन होकर दाहिने नासापुट से बाह्यवायु को अन्दर की ओर खींचकर नासाग्र से शिखा देशपर्यन्त वायु को भरकर तब तक कुम्भक किया जाता है तब तक नाखूनों के किनारे और बालों में पसीना निकलना प्रारम्भ न हो जाय। अन्त में अंगूठे से दायें नासापुट को दबाकर बायें स्वर से वायु को बाहर रेचन किया जाता है। यह प्राणायाम शीतऋतु में दिन में चार बार किया जा सकता है। इसका फल योगसिद्धान्त चन्द्रिका में लिखा है—

'कपाल शोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोषहृत्। पुनः पुनरिदं कुर्यात् सूर्य भेदनमुत्तमम्

अर्थात् इससे मस्तिष्क की शुद्धि ८० प्रकार के वातदोषों की निवृति और उदरस्थ कृमि दोष निवृत हो जाते हैं।

उज्जायी कुम्भक—मुख को बन्दकर इड़ा–पिंगला से वायु को शनैः शनै खींच कर प्राणवायु को हृदय से लेकर कण्ठ तक व्याप्त करना है तथा कुम्भक करना है। अन्त में वामनाड़ी से रेचक किया जाता है। यह बैठकर अथवा चलते–फिरते भी हो सकता है। **घेरण्ड संहिता** के अनुसार पूरक के साथ शरीर के विभिन्न भागों से शक्ति को खींचकर कण्ठ से हृदय प्रदेश पर्यन्त इकट्ठा करना होता है। पश्चात् शनैः शनै रेचना करते हैं। इसका फल है— कण्ठ सम्बन्धी कफदोष, उदर सम्बन्धी जलोदरादि दोषों की निवृति तथा जठराग्नि की वृद्धि।

सीत्कारी कुम्भक—में कौवे की चोंच की तरह जिह्वा बनाकर उससे उदरस्थ वायु का रेचन करके उसी

के मध्य भाग से सी–सी करके पूरणकर मुख बन्द कर कुम्भक किये बिना दोनों नासा पुटों से वायु का रेचन किया जाता है। इसका फल है– कामदेव के समान सुन्दर, स्त्री समूह द्वारा पूज्य तथा उत्पत्ति संहार में समर्थ। छः मासतक इसका अभ्यास करने पर शरीर की व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

शीतली कुम्भक—में सीत्कारी की भाँति पूरक कर वायु को कुम्भक रीति से रोककर रेचन करना होता है। शीतली कुम्भक उदर, वात, पित्त सम्बन्धी व्याधियों को नष्ट कर सर्पविष को भी शान्त कर देती है। योग सिद्धान्त चन्द्रिका में उल्लेख है–

गुल्मप्लीहोदरं वापि वातपित्त क्षुधातृषा, विषाणि शीतलीनाम कुम्भकों विनिहन्ति च।

भस्त्रिका कुम्भक में—प्रयत्न साध्य अभ्यास में पद्मासन में बैठकर समकाय शिरोग्रीव होकर मुख को दृढ़ता से बन्द रख हृदयस्थ और उदरस्थ पवन का रेचनकर लुहार की धौकनी की तरह हृदय और मस्तक पर्यन्तवायु को अविरलगति से पूरित किया जाता है। नारायणतीर्थ ने दूसरे प्रकार से भस्त्रिका कुम्भक का उल्लेख किया है। सूर्यनाड़ी द्वारा तब तक पूरक करे जब तक शरीर में थकान का अनुभव हो। फिर आपूरितवायु को उदर में कुम्भककर रोका जाय। वाम नासाविकार को अंगुष्ठक, अनामिका तथा कनिष्ठा से दबाकर रोका जाय। अनन्तर रेचक किया जाय। भस्त्रिका कुम्भक से वात–पित्त–कफ जन्य दोष दूर होकर कुण्डलिनी प्रबोधन होता है। शक्तिपात होने पर भस्त्रिका कुम्भक किसी भी अवस्था में स्वतः होता है।

भ्रामरी कुम्भक में दोनों नासापुटों से भ्रमर की तरह गुंजार करते हुए दीर्घस्वर से पूरक प्राणायाम किया जाता है। कुम्भक करने के पश्चात् भ्रमर गुंजार स्वर में ही कण्ठ से प्राणवायु का रेचन किया जाता है। इससे चित्त में अपूर्व आनन्दानुभूति होती है।

मूर्च्छा कुम्भक में नासिका पुटों से पूरक कुम्भक कर जालंधर बन्ध लगा कर दृष्टि को भ्रूमध्य में केन्द्रित करलें। इससे मन मूर्च्छित हो जायेगा और वायु स्तम्भित हो जायेगी। पश्चात् शनैः शनैः वायु का रेचन किया जाता है। मन की लयावस्था होकर विक्षिप्तावस्था दूर होकर एकाग्रता बढ़ती है।

प्लावनी कुम्भक में—शरीर के मध्यवर्ती उदर को पूरी तरह वायु से पूरित कर जल के ऊपर तैरता रहता है।

केवल कुम्भक में—बाह्यवृत्ति रेचक तथा अभ्यान्तर वृत्ति पूरक वायु की अपेक्षा न रखते हुए सुखपूर्वक वायु धारण किया जाता है। सहित कुम्भक की तरह इसमें देश, काल और संख्या द्वारा निर्धारित दीर्घ सूक्ष्मता नहीं होती। सहित कुम्भक से केवल कुम्भक अधिकारी भेद के कारण भिन्न रखा गया है। सहित कुम्भक का अभ्यास करते–करते अन्त में केवल युक्त सिद्ध होता है। केवल कुम्भक नाड़ी गत दोषों के सहित कुम्भक द्वारा दूर होने पर ही सम्भव हो पाता है। केवल कुम्भक, स्तम्भवृत्ति अर्थात् जहाँ के तहाँ प्राण का रुका रहना, शक्तिपात के बाद साधकों पर स्वतः होने लगता है। इसका फल है—वाक्सिद्धि, गतिसिद्धि, दूरदृष्टि, श्रवणसिद्धि, सूक्ष्मदृष्टि, परकाय प्रवेश, योगी की विष्ठा और मूत्र के लेपन से ताम्रपत्र का स्वर्ण में परिवर्तित होना, अन्तर्धान होना आदि। योगसिद्धान्त चिन्तामणि में नारायण तीर्थ ने प्राणायाम के दो अन्य

प्रकारों का उल्लेख किया है— १. जपध्यान रहित अगर्भ ध्यान। २. जपध्यान सहित सगर्भ प्राणायाम। सगर्भ प्राणायाम पहले की अपेक्षा सौ गुना श्रेष्ठ है। सगर्भ के तीन भेद हैं। **१. सधूमक**—ॐकार की त्रिविध मात्राओं के ध्यान सहित। **२. सज्वाल**— ॐकारगत मात्राओं में देवताओं का ध्यान करते हुए प्राणायाम। **३. प्रशान्त**—ॐकार मंत्र मात्रा देवता के ध्यान से रहित प्रणव के लक्ष्यभूत आत्मतत्व के ध्यानपूर्वक प्राणायाम। इन प्राणायामों की परीक्षा देश, काल, संख्या से की जाती है।

नासिकाग्र भाग से १२ अंगूल दूर रेचक प्राणायाम की गति दीर्घ सूक्ष्म प्राणायाम समझा जाता है। पूरक प्राणायाम में चींटी के सदृश स्पर्श नीचे नाभि से लेकर पादतलपर्यन्त और ऊपर मस्तकपर्यन्त स्थिति पूरक प्राणायाम का दीर्घ सूक्ष्म रूप है। रेचक पूरक के बाह्य आभ्यन्तर देश कुम्भक प्राणायाम के भी हैं। ३६ मात्रा पर्यन्त रेचकादि प्राणायाम काल की दृष्टि से दीर्घ सूक्ष्म होता है। मात्रा की गणना सामान्य गति से चारों ओर हाथ घुमाकर चुटकी बजाने अथवा बारह लघु वर्णों (यथा क,च,त,ट,प आदि) को शीघ्रता से उच्चारण करने में जितना काल लगता है वह एक मात्रा काल होता है। १२ श्वास–प्रश्वास का जब एक श्वास बनता है तो प्राणायाम संख्या की दृष्टि से मृदुदीर्घ सूक्ष्म कहलाता है। २४ श्वास–प्रश्वास के एक श्वास के प्राणायाम से मध्य दीर्घ सूक्ष्म प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम की अवस्थायें चार हैं— आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था तथा निष्पत्ति अवस्था। प्राणायाम का अभ्यास प्रातः, मध्याह्न, सायं और अर्द्धरात्रि— इन चार कालों में किया जाता है। इस आरम्भावस्था के प्राणायाम से नाड़ी–शुद्धि होती है तथा रूप लावण्य, तेजस्वी, शुभगंध एवं नीरोग शरीर होता है। घटावस्था में प्राण + अपान, नाद + बिन्दु, जीवात्मा + परमात्मा की जो अवस्था घटती है वह घटावस्था होती है। प्राणवायु अपने साथ अपान, नाद, बिन्दु का एकीकरण करके कण्ठस्थ षोडशदलात्मक विशुद्ध चक्र के स्थान तक पहुँचती है। इससे साधक में अलौकिक शक्ति प्रादुर्भूत होती है। उसके लिये कोई वस्तु जग में अलभ्य नहीं रहती है। परिचयावस्था में प्राणवायु आठ घड़ी पर्यन्त निश्चल रहती है। प्राण षट्चक्र का भेदनकर सुषुम्ना रूप आकाश में संचरण करता है। वहाँ पर योगी अपने प्रारब्ध, संचित क्रियमाण कर्मों का साक्षात्कार करता है। (**तत्र कर्मणां त्रिकूटं पश्यति**। यो. सि.च.९९) संचित एवं क्रियमाण कर्मों को प्रणव जप से तथा प्रारब्ध, कर्मों को उपभोग द्वारा नष्ट किया जाता है। इस अवस्था में अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। **निष्पत्ति अवस्था** में प्राणवायु क्रियाशील (नाद, बिन्दु) तथा चेतनशक्ति (जीवादि) को लेकर, षट्चक्र का भेदन कर शीघ्रता से ज्ञान शक्ति में लीन हो जाती है जिससे योगी मुक्त हो जाता है। (**अनादि कर्म बीजानि यतः छित्वाऽमृतं भवेत्**। यो.सि.चि. ९९) आचार्य यासवल्क्य एक मात्र प्राणायाम को ही सभी प्रकार के मलों की निवृत्ति का उपाय मानते हैं। प्राणायाम से ही चित शुद्धि, मन शुद्धि, शरीर शुद्धि सबकुछ सम्भव है। षट्कर्मों की आवश्यकता नहीं है। प्राणस्थिर होने पर बिन्दु भी स्थिर हो जाता है। प्राण के स्थिर होने पर मन भी स्थिर हो जाता है। चित्त में निष्कामता आती है। प्राणों की चंचलता से ही वासना पैदा होती। निश्चल चित्त में वासना नहीं पैदा होती है। निर्वासनिक मन और स्थिर प्राण में आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। वायु की गति निरुद्ध हो जाने पर वायु का धर्म स्पर्शानुभव भी नहीं रहता। अस्पर्श योग की अवस्था हो जाने पर आत्मदर्शन होता है।

* * *

किमस्ति योगः

(षोडशी शृंखला)

रचनाकार : द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ।

योग की गणना दर्शनों में की गई है। योग, जीवनी शक्ति को स्वरूप में स्थिर करके मणि की भाँति स्वयं प्रकाशित आत्मा के स्वरूप को 'अनुभव' करने की विशिष्ट कला भी है। श्री मद्भागवत गीता में इसे भिन्न–भिन्न दृष्टियों से **'समत्वं योग उच्यते'** तथा **'योगः कर्मसु कौशलम्'** इस प्रकार वर्णन किया गया है। योग केवल चिन्तन और चर्चा का विषय नहीं है, बल्कि इसके लिए अभ्यास और अनुभूति भी आवश्यक है। महर्षि पातंजलि के अतिरिक्त विभिन्न आचार्यों ने भी योग सूत्रों पर टीकाऐं की हैं, किन्तु पातंजलि द्वारा रचित शास्त्र का महत्व इसलिए अधिक है क्यों महर्षि ने स्वयं अपने जीवन में इस कला का अभ्यास किया। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर **'योग'** का सूक्ष्म दर्शन किया। अतः यह महान ग्रन्थ स्वयं प्रमाणित है— ऐसी मान्यता उचित ही है।

योग जैसे गूढ़ विषय पर महर्षि पातंजलि द्वारा रचे गये **'योगदर्शन'** के सूत्रों की सरल व्याख्या करना वास्तव में इतना सरल नहीं है कि बिना श्री गुरुदेव जी की अहैतुकी कृपा के यह सम्भव हो सके। श्री सद्गुरुदेव की महती कृपा ही है कि जिसके कारण उनके अनन्य भक्त श्री द्वारका प्रसाद शर्मा द्वारा योग सूत्रों की सरल व्याख्या श्लोकबद्ध की गई है और **'किमस्ति योगः'** शीर्षक के अन्तर्गत **सिद्धयोग** के जिज्ञासु पाठकों के समक्ष सतत् प्रस्तुत की जा रही है। **किमस्ति योगः** की यह सोलहवीं श्रृंखला है। पाठकवृन्द निश्चित ही पातंजलि के योग–सूत्रों की इस सरलीकृत व्याख्याओं से लाभान्वित हो रहे होंगे— ऐसा विश्वास है। इस श्रृंखला को और अधिक उपयोगी बनाने सम्बन्धी सुधी पाठकों की सम्मति/ टिप्पणी अपेक्षित है। **—भुवनेन्द्र झा**

श्री सद्गुरुदेव की असीम कृपा से प्रस्तुत लेख में साधनपाद के अन्तर्गत एक सूत्र का आधार लेकर पूर्व की भाँति स्वरचित श्लोकों के माध्यम से तथा प्रत्येक श्लोक के नीचे दिये जा रहे हिन्दी भावानुवाद सहित, व्याख्या का प्रयास किया जा रहा है। आशा है क्रमागत इस लेख को भी योगपरायण जिज्ञासु पाठकवृन्द प्रभुप्रसादरूप में ग्रहण करते हुए बुद्धिगम्य व आत्मसात् करना चाहेंगे।

(१) श्री गुरुणां कृपैषा हि, गहने योगदर्शने।
निमित्तीकृत्य मां मन्दं, अमन्दं विदधाति या।।

श्री सद्गुरुदेव की वह कृपा ही मुझ मन्दमति को अमन्द (गतिप्रदान कर गतिशील) बना इस गूढ़ योगदर्शन की व्याख्या में मात्र निमित्त बना रही है।

(२) स्थित्वा गले या श्री रिव, वाचं में मुखरायते।
शतशः चरणौ वन्दे, आरभे पूर्ववत् पुनः।।

श्री गुरूदेव की कृपा ही कण्ठ में सरस्वती बन विराजमान हो मेरी वाणी को मुखर कर रही है। मैं श्री गुरूचरणों की शत–शत वन्दना कर पूर्व की भाँति योग सूत्र की व्याख्या करना आरम्भ कर रहा हूँ।

(३) साधनपादान्तर्गतं, सूत्रं निम्नाङ्कितं च यत्।
व्याख्यातुं सोद्यमोऽहं वै, तेषामेव प्रसादतः।।

श्री गुरूदेव की ही कृपा से योगदर्शन के साधन पाद के अन्तर्गत निम्नांकित सूत्र की व्याख्या करने को मैं तत्पर हुआ हूँ वह सूत्र है :–

विशेषाविशेष लिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि।

(साधनपाद २/१९)

(४) चतस्रस्ता अवस्थाः स्युः, गुणानां परिणामतः।
सत्वंरजस्तमस्कानां, विशेषः प्रथमो मतः।।

विशेष, अविशेष, लिंगमात्र, लिंग ये चार गुणों की अवस्थायें (परिणाम) हैं। अब आगे प्रथम अवस्था विशेष को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

(५) अविशेषो द्वितीया स्यात्, लिंगमात्रं तृतीयका।
चतुर्था लिंग संज्ञाका, एवं चतुर्विधा मताः।।

अर्थ स्पष्ट है।

(६) महाभूतानि पंचैव, पंच कर्मेन्द्रियाणि च।
ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव, षोडशं मन एव हि।।

विशेष के अन्तर्गत पांच महाभूत– आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि जो पांच ज्ञानेन्द्रियों के नियामक है क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और नासिका तथा पांच कर्मेन्द्रियां– वाणी, हस्त, पाद, लिंग व गुदा तथा मन ये सोलह तीनों गुणों के विशेष परिणाम है।

(७) सुख दुःख मोह इत्याद्याः गुणधर्माः प्रकीर्तिताः
शान्तं मूढं तथा घोरं, भूत्वा ते निवसन्तीह।।

तीनों गुणों के सुख, दुःख, मोहादि जो विशेष धर्म हैं वे शान्त, मूढ और घोर रूप में इसमें रहते हैं।

(८) शब्दः, स्पर्शस्तथा रूपं, रसो गन्धस्तथैव च।
इत्येतास्तन्मात्रास्ता:, मनश्चाहंकृति कारणम्।।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच तन्मात्रायें या छठा अहंकार जो मन इन्द्रिय के कारण है इसकी अविशेष संज्ञा है।

(९) न दृहशिगोचरा ह्येते, गुणधर्मा उदाहृताः।
अविशेषाख्यका: सर्वे, न स्वरूपं दधत्यत:।।

अतः इन का स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिये ये छ: तीनों गुणों के अविशेष धर्म है।

(१०) उपर्युक्ता गुणाः सर्वे, द्वा विंशति संख्यका:।
महत्कारण मस्य स्यात्, सन्तामात्रत्वेन भासते।।

लिंगमात्र २२ तत्वों का कारणभूत महत्तत्व है। इसका ज्ञान सत्तामात्र होने से इसका नाम लिंगमात्र है।

(११) अत एनं लिंगमात्र संज्ञयाभिहितं तत:।

अर्थ ऊपर के श्लोक के अनुवाद में समाहित है।

(१२) प्रकृतिर्मूल रूपेण, गुणा: सत्वरजस्तमा:।
अवस्थायां तु साम्यायां, लिंगं संज्ञात्म कं मतम्।।
विद्यते यत्र नो चिह्नं, तस्माल्लिंगमुदाहृतम्।।

मूल प्रकृति अर्थात् गुणों की साम्यावस्था लिंग है। उसका कोई चिह्न न होने से लिंग है।

(१३) गुणानां परिणामेन, अवस्था: स्युश्चतुर्विधा:।
वैषम्येन गुणानान्तु, पूर्वास्तिस्र उदाहृता:।।

ये तीनों गुणों के परिणाम की चार अवस्था विशेष है। इनमें से पहली तीन अवस्था गुणों के विषम परिणाम है।

(१४) एतास्तिस्र: पूरूषस्य, साधयन्ति प्रयोजनम्।
चतुर्थायामवस्थायां, साम्यमायान्ति तद्गुणा:।।

यही पुरूष के प्रयोजन को साधती है। चौथी लिंग अवस्था गुणों के साम्य परिणाम है।

(१५) पुरूषस्यापवर्गस्य, प्रवृत्तिर्नो भवेत्क्वचित्।
परं प्रवृत्तिर्भविता, गुणा मूले स्थिता यदो।।

इसकी पुरुष के अपवर्ग किसी प्रयोजन में प्रवृत्ति नहीं होती। किन्तु इसी अवस्था की ओर जाने की प्रवृत्ति मूल अवस्था होने से होती है।

(१६) एषैव माया भणिता, सर्वव्यापिनि या स्थिता।
सूत्रेऽग्रिमे पुनर्द्रष्टुः स्वरूपं वर्णयिष्यते।।

इसी को माया कहते हैं जो सर्वत्र व्याप्त है। आगे के सूत्र में हम द्रष्टा के स्वरूप का विवेचन करेंगे।

(१७) सूत्रमेतत् समाख्याय, ध्यात्वा श्री चरणौ गुरोः।
द्वारका नाम शिष्योऽहं, प्रणमामि पुनः पुनः।।

श्री सद्गुरुदेव के चरणों का ध्यान करते हुए इस सूत्र की व्याख्या करता हुआ मैं गुरुदेव का शिष्य 'द्वारका' उन श्री चरणों में बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

सुखिनो वयं स्याम सुखिनश्च सर्वे !

पुराणोऽगमत्वर्ष आयान्नवी जो,
जानीमहे नो किं नूत्नमस्ति।
जानीमहे तद् यदभूत्तु केवलं,
अज्ञात मे वास्ति नवं-नवं किम्।।
विवशाः ह्यतीते न वशो ह्यनागते,
पलं-पलं यद् घटमान एव नः।
भवेज्जनोः साध्यमिहास्तु परहितं,
शुभैश्चिन्त्य मन्त्राचरणैस्तु सर्वथा।।
नीरुक् तनुः स्यान्मनसि सुभावः,
आयातु वित्तं च यथेष्ट रूपे !
सुखिनो वयं स्याम सुखिनश्च सर्वे,
भूयात्प्रभो ! नो नववर्षमीदृक्।।

पुराना गया वर्ष आया नया है,
नहीं जानते हम नया उसमें क्या है ?
जानें वही जो घटित हो गया है,
अविज्ञात, नववर्ष में क्या नया है ?
विगत में विवश हम अनागत न वश में,
घटमान प्रत्यक्ष प्रतिक्षण हमारा।
परहित बने साध्य जीवन का प्यारा,
चिन्तन, मनन, आचरण शुभ के द्वारा।।
नीरोग तन हो शुभभाव युत मन,
यथेष्ट धन-आगम भी बना रहे।
सुखी रहें हम सुखसे जियें सब,
नववर्ष ऐसा कर दो प्रभो, हे !

द्वारका प्रसाद शर्मा

श्री उमाशंकर गुप्त की प्राण रक्षा

केशवदेव उपाध्याय (वाराणसी)

श्री उमाशंकर गुप्त जी ग्राम—उरई, जिला—जालौन (उ० प्र०) के निवासी हैं। इनकी पत्नी सौभाग्यवती सहधर्मिणी का नाम श्रीमती उषा गुप्ता है। जिनके साथ इनका पाणिग्रहण संस्कार सन् उन्नीस सौ बहत्तर ई० में हुआ था। इस समय इस दम्पत्ति को दो पुत्र एवं एक पुत्री है। आदरणीय भाई जी इस समय भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स की झाँसी शाखा में कार्यरत हैं। इनका यह छोटा सा परिवार श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में श्रद्धा का पुतला है एवं अनाथनाथ की करुण कृपा से पूर्ण रूप से ओतप्रोत है। जीवन दान की यह घटना मई माह सन् उन्नीस सौ सतासी की है। इनके पेट के बाँयें हिस्से एवं कमर में थोड़ा—थोड़ा दर्द आरम्भ हुआ। इन्होंने इसकी दवा कराना आरम्भ किया परन्तु रोग घटने की बजाय धीरे—धीरे बढ़ता ही गया। एक समय वह भी आ गया कि इनका पेट दर्द एवं कमर का दर्द इतना तेज एवं असह्य हो गया कि अब इन्होंने यह सोचना आरम्भ कर दिया कि इस भयानक असह्य कष्टदायक जीवन से तो मर जाना ही बेहतर है। रोग के उचित उपचार हेतु इन्हें झाँसी मेडिकल कॉलेज में दिखाया गया। कई दिनों तक इनके रोग का परिक्षण एवं जाँच करने के पश्चात डाक्टरों ने कैंसर रोग घोषित किया। इसके पश्चात इन्होंने डाक्टरों से उपचार एवं दवा कराना आरम्भ किया। दवाओं के लगातार एवं नियमित सेवन से भी जब कोई आराम नहीं मिल पाया तो डाक्टरों की खण्डपीठ ने इन्हें उचित उपचार हेतु टाटा मेमोरियल हॉस्पीटल बम्बई को अग्रसारित किया। झाँसी मेडिकल कालेज के डाक्टरों ने शायद इनका अन्तिम समय जानकर ही बाम्बे टाटा मेमोरियल हॉस्पीटल को रेफर किया था क्योंकि जिस समय इन्हें बाम्बे के लिये जाने की सलाह दी गयी उस समय इनका शरीर मात्र हड्डियों का कंकाल ही शेष रह गया था। चेहरा बड़ा ही डरावना सा बन गया था। शरीर की शक्ल इतनी भयावह हो गयी थी कि कोई भी आदमी इन्हें देखना पसंद नहीं करता था। ऐसी शारीरिक दुर्बलता में इनका अपने से बाम्बे हॉस्पीटल जाना असम्भव ही था। पतिव्रत धर्म में निपुण पतिपरायणा सौ० ऊषा देवी के अथक परिश्रम एवं श्री सद्गुरूदेव भगवान की अहैतुकी कृपा के सहारे ये टाटा मेमोरियल हॉस्पीटल बाम्बे ले जाये गये। वहाँ भी लगभग दस दिन तक इनकी जाँच पड़ताल होती रही। परिक्षणोपरान्त डाक्टरों की सहमति बनी कि इनका दो बार आपरेशन किया जाय। पहली बार छोटा आपरेशन करने की बात हुई एवं उसके कुछ दिन बाद मेजर आपरेशन किया जाना तय हुआ। छोटे आपरेशन के बाद जब इन्हें कुछ आराम हुआ तो उसके कुछ दिन बाद डाक्टरों ने इनके मेजर आपरेशन की योजना बनायी। मेजर आपरेशन जो ६ जुलाई उन्नीस सौ सतासी को होना तय हुआ, इनके लिए प्राण लेवा भी साबित होने की सम्भावना डाक्टर समुदाय द्वारा व्यक्त की गयी। ये बातें इनकी पत्नी को मालूम थी अतः उनका मन भविष्य की इस घटना से बहुत घबड़ाया। एक दिन इन्होंने आरती पूजन से निवृत होकर करीब एक घण्टे मन्त्र जप किया, थोड़ी देर ध्यान लगाने का प्रयास किया एवं फिर आराध्यदेव श्री सद्गुरु देव जी महाराज को

अपने कष्टों के निवारण हेतु पत्र लिखा। इस प्रार्थना पत्र में इन्होंने अपनी व्यथा के साथ बार–बार यही निवेदन किया था कि प्रभो ! आप सर्व समर्थ हैं एवं आप ही मेरे एकमात्र आधार हैं, अत: किसी भी प्रकार हमारे सुहाग की रक्षा करने की अहैतुकी कृपा करें। इन्होंने यह भी लिखा था कि आप का कृपा पत्र मिलने के बाद ही दूसरा मेजर आपरेशन होगा, अत: कृपापत्र यथाशीघ्र देने की कृपा की जाये।

पत्र छोड़ने के सात दिन बाद इन्हें हॉस्पीटल में ही श्री प्रभु जी का कृपा पत्र प्राप्त हो गया। आराध्यदेव जी ने लिखा था कि सौभाग्यवती लल्ली ! तुम्हें रंचमात्र भी उदास एवं निराश होने की आवश्यकता नहीं है। चलते फिरते, उठते–बैठते, हर समय अपने मंत्र का जप करते हुए श्री प्रभु जी के अभय चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन करती रहो। हमारा शुभ संकल्प सदैव तुम्हारे साथ है। वे अनादिसिद्ध, नैपालवासी हमारे तुम्हारे प्राणाधार श्री प्रभु जी अवश्य ही तुम्हारे सुहाग की रक्षा कर तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण करेंगे। पत्र को पाकर ये दम्पत्ति महान आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव करने लगे एवं इस कृपा पत्र को कई–कई बार दोनों ने पढ़ा। हॉस्पीटल में इन दोनों पराशक्तियों का दीक्षा वाला स्वरूप उपलब्ध नहीं था अत: इनकी पत्नी लाकेट वाले स्वरूपों को ही दोनों समय प्रात: एवं सायं आरती अगरबत्ती दिखाकर एवं मंत्र जप किया करती थीं।

काल चक्र बराबर चल रहा है अत: एक–एक दिन करके वह तिथि भी आ गयी जिस दिन श्री गुप्ता जी का आपरेशन होना था। आपरेशन के दिन अच्छी प्रकार खूब विधि विधान से पूजा पाठ कर श्री गुरूदेव भगवान एवं दादा गुरूदेव का स्मरण करते हुए ये आपरेशन थियेटर में गये। इनकी साध्वी पत्नी आपरेशन थियेटर के बगल में बने वेटिंग हाल में बैठकर अपने पतिदेव की वापसी का इंतजार करने लगीं एवं श्वांस प्रश्वांस में तीव्रगति से मंत्र जप के साथ श्री प्रभु जी के स्थूल दर्शन होने आरम्भ हो गये। आपरेशन की पूरी प्रक्रिया करीब साढ़े तीन घण्टे में हुई एवं ये दोनों आध्यात्मिक शक्तियाँ पूरे समय तक श्री गुप्ता जी के पास स्थूल रूप से उपस्थित रहीं। श्री गुप्ता जी का श्वांस प्रश्वांस जप स्वयं ही हो रहा था।

''जब राम बली हैं नौका पर, बल्ली की कौन जरूरत है''

वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए आपरेशन सफल रहा एवं ये हॉस्पीटल में कुछ दिन रहने के बाद दवा सेवन का निर्देश देकर रिलीज कर दिये गये। अनन्य गुरूप्रेम एवं श्रद्धा से युक्त ये दम्पति अस्पताल से निकलने के बाद सीधे योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सँवाई धाम श्री गुरूदेव के चरण कमलों के दर्शनार्थ पहुँचे। आश्रम पहुँचकर इस दम्पति ने श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम किया एवं उनकी आज्ञा पाकर सामने बिछाये टाट पर बैठ गये। इस दम्पति ने श्री गुरूदेव भगवान को आपरेशन की सभी जानकारी स्थूल रूप से प्रदान की। उनकी प्रार्थना को सुनने के बाद श्री प्रभु जी ने कहा कि लल्ला, तुम लोग कुछ दिनों हमारे पास आश्रम पर रहकर साधना करो, हम तुम्हें पूर्णिमा के चाँद जैसा चमका देंगे। यद्यपि श्री गुप्ताजी का रोग समाप्त हो गया था परन्तु रोग की विकरालता एवं कष्ट भोगने तथा दवाओं के सेवन से इनके सिर पर एक भी बाल शेष नहीं था। ये दम्पति गुरू आज्ञा शिरोधार्य कर कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा सँवाई धाम में निवास हेतु रुक गये। इसी बीच ऐसा हुआ कि एक दिन गुप्ता जी एक कोठरी में हमारे गुरुभाई–बहनों के बीच बैठकर अपने उपर होने वाली श्री प्रभु जी की अलौकिक कृपाओं एवं आपरेशन के समय हुए दिव्य दर्शन की बात कर रहे थे एवं इनकी पत्नी श्री गुरूदेव भगवान के पास बैठकर अनादि सिद्ध महाप्रभु

श्री रामलाल जी महाराज के कृपा चरित्रों को श्री गुरूदेव भगवान के मुखारबिन्दु से कई अन्य भाई–बहनों के साथ सुन रहीं थीं।

श्री प्रभु जी ने अपने श्री मुख से जब श्री महाप्रभु जी का लीला वर्णन समाप्त किया तो सभी लोगों ने जयकारा लगाया। इसके बाद श्री प्रभु जी ने अपने मुखारबिन्दु से इनकी पत्नी को आदेश दिया कि अपने पतिदेव को बुलाओ। वे इन्हें खोजने लगीं एवं खोजते–खोजते उस कमरे में पहुँच गयीं जहाँ गुप्ता जी श्री गुरूदेव भगवान एवं महाप्रभु जी के कृपा चरित्रों को सुना रहे थे। भीड़ काफी थी एवं सब लोग श्री प्रभु जी के कृपा चरित्र सुनने में इतने तल्लीन थे कि इन्होंने गुप्ता जी गुप्ता जी कहकर आवाज लगायी परन्तु किसी ने ध्यान नहीं दिया। थोड़ी देर बाद जब एक गुरूभाई ने इनकी आवाज सुनकर इनकी तरफ देखा तो इन्होंने कहा कि गंजे गुप्ता जी को भेज दीजिये, गुरूदेव जी बुला रहे हैं। जब ये दम्पत्ति श्री गुरूदेव भगवान के चरणों में पहुँचे तो गुरूदेव भगवान ने मुस्कराते हुए कहा कि देवी तुमने अपने पति को आवाज कैसे दी। इनकी पत्नी ने कहा कि हमने इन्हें गंजे गुप्ता जी कहकर पुकारा, इस पर श्री प्रभु जी ने मुस्कराते हुए कहा कि यह तुमने अच्छा नाम रख दिया, अब आज से हम भी गंजे गुप्ता कहकर ही पुकारेंगे।

संस्कार वशात् ये दम्पति श्री प्रभु जी की आज्ञा का जो आश्रम पर निवास करने की थी, पूरी तरह पालन नहीं कर सके एवं इन्हें बीच में ही घर लौटना पड़ा। खैर, इस समय श्री प्रभु जी की करूण कृपा से ये अपनी सहधर्मिणी पत्नी एवं बाल गोपालों के साथ पूर्ण सुखमय जीवन यापन करते हुए, गुरूदेव की आज्ञानुसार अपनी नियमित योग साधना करते हैं एवं आसपास होने वाले कार्यक्रमों में सपरिवार भाग लेकर लौकिक एवं पारलौकिक आनन्द लाभ कर रहे हैं।

नियमित आरती, पूजन, भजन एवं ध्यान के फलस्वरूप इनके छोटे मोटे कष्टदायक संस्कारों का भुगतान बड़ी सरल एवं सूक्ष्म विधि से हो जाया करता है। इस प्रकार की अनेक घटनाओं का वर्णन इन्होंने सपत्नीक अश्रुपूरित नेत्रों एवं गद्‌गद् कंठ से सुनाने की कृपा की है।

जनवरी-फरवरी ९६ का संयुक्तांक

किन्हीं अपरिहार्य तकनीकी विवशता के वशीभूत 'सिद्धयोग' का दसवाँ (जनवरी ९६) अंक प्रकाशित नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप पाठकों को हुई असुविधा का हमें खेद है। जनवरी–फरवरी का संयुक्तांक आपकी सेवा में प्रस्तुत है। विश्वास है 'सिद्धयोग' के विद्वतजन रचनाकारों एवं सुधी पाठकों का स्नेह और सहयोग हमें पूर्ववत् निरन्तर प्राप्त होता रहेगा।

—प्रकाशक

योग द्वारा हर कार्य सम्भव है

डा. स्वामी केशवाचार्य, चान्दोह (बड़ौदा)

'योग' शब्द 'युजिर' योग धातु से बनता है। जिसका अर्थ है, जुड़ना—जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिल जाना, भगवद्रूप हो जाना। योग शब्द 'युज समाधौ' से भी निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है समाधि सम्यक प्रकार से भगवान के साथ मिल जाना, योग का अभिप्राय जोड़ से है। गीता तो उपनिषद् ग्रन्थ रत्न है उसमें योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने **योगः कर्मसु कौशलम्** कहा जिसका भावार्थ है—कर्म की निपुणता योग कहलाता है। महर्षि पतंजलि ने चित्त वृत्तियों को रोकना योग कहा है। योग विद्या भारत की अमूल्य निधि है। इसका जीवन में बहुत बड़ा महत्व है, उपयोगिता है। योग के पुरातन वक्ता आद्य शंकराचार्य जी एवं हिरण्यगर्भ जी भी हैं। योगीश्वर महादेव जी ने सर्वोत्कर्ष समस्त विश्व के कल्याणार्थ योग का उपदेश दिया। शिक्षा की दृष्टि से भी योगाभ्यास की परमावश्यकता है। इससे जीवन सार्थक हो जाता है। यह योग तन को सुसंगठित, मन को नियन्त्रित और आत्मा को उद्भाषित करता है। योग साधना से आश्चर्य जनक विलक्षण कार्य किये जाते हैं। योग व्यापक शब्द है। इसका योग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यावहारिक बोलचाल की भाषा में प्रयोग होता है। जैसे योग, संयोग, वियोग, उपयोग, अतियोग, नियोग, कर्मयोग आदि अनेक शब्द योग से संश्लिष्ट हैं। योग बल से योगियों महर्षियों ने आलौकिक (कौतुहल पूर्ण) कार्य जैसे—दूर श्रवण, परकाय प्रवेश, दूर दर्शन, आकाशारोहण, मृतकों को जीवित करके दिखा दिया। रुद्रावतारी हनुमान जी जन्मजात योगी हैं। अंजनी के गर्भ से प्रगट होते ही वह छलांग लगाकर सूर्य मण्डल तक पहुँच गये। यह आकाशारोहन की अद्भुत शक्ति श्री राम भक्त पवनसुत में कही गयी है।

भगवान योग योगेश्वर श्री महाप्रभु जी (श्री रामलाल जी) महाराजजी इसी तरह सिद्धगुफा सवाई धाम से छलांग लगाकर रात्रि कालीन सत्र में ही कुछ वर्षों पूर्व ही हिमालय पहुँच गये। जिस हिमाच्छादित हिमालय पर आज भी जाने से ऐसा आभासित होता है कि श्री महाप्रभु जी आज भी यहीं कहीं पास में है। और कुछ अदृश्य उपदेश कर रहे हैं। यह आकाशारोहन योग है। श्री वेद व्यास जी ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान कर दूर दर्शन व दूर श्रवण की शक्ति दी। महर्षि व्यास ने कुरुक्षेत्र में महाभारत के युद्ध में वीरगति को प्राप्त मृतक योद्धाओं को युद्ध समाप्ति के बाद एक रात जीवित कर उनको उनके पारिवारिक जनों से मिलाकर परस्पर सम्भाषण कराया। यह भी योग का ही परिणाम है। योग के द्वारा ही पुराणों, स्मृतियों, महाभारत जैसे ग्रन्थ रत्नों की रचना की है। कुछ जन्मजात योगी हुए तो कुछ साधना कर योग विद्या में निपुण हुए। जैसे—मार्कण्डेय, परसुराम, विश्वामित्र, अगस्त्य, दुर्वासा, उपमन्यु, नारदादि जिनकी यौगिक क्रियाओं और उनके कार्यकलापों की आज भी चर्चा है। मार्कण्डेय जप योग से अमर हो गये। परसुराम जी ने योगबल से अनेकों बार भूमण्डल पर अकेले विजय प्राप्त की। शस्त्र शास्त्र के परमाचार्य हुए।

''शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वैविध्ये प्रतिपत्तये।''

विश्वामित्र द्वारा नवीन सृष्टि रचना, अगस्त्य द्वारा समुद्र की जलराशि को पी जाना, दुर्वासा ऋषि से तो राष्ट्र के राजा महाराज डरते थे काँपते थे। नारदजी योग बल से भूत, भविष्य वर्तमान के ज्ञाता–त्रिकालज्ञ थे, स्वच्छन्द अबाध गति से सर्वत्र आते जाते बिना आश्रय आधार के भी आकाश में विचरण करते थे, सर्वत्र पहुँच कर परोपकार करते थे।

तत्क्रमानुसारेण आज भी हमारे सबके श्री सद्गुरुदेव प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद अनन्तश्री समलंकृत योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योग द्वारा ही आशीर्वाद देते हुए प्रति पल संरक्षण प्रदान करते ही रहते हैं। जिस संरक्षण का पूर्ण अनुभव श्रद्धालु साधक योगी कभी भी, किसी क्षण, किसी समय निः संकोच कर सकते हैं।

योग साधना के बल से देवराहा बाबा भी दीर्घायु को प्राप्त रहे थे। योगिराज कहलाये।

वाराणसी के चांगदेव ने योग बल से चौदह सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त की। एक बार वे बाघ पर सवार हो हाथ में साँप की चाबूक लेकर कालिंदी की यात्रा पर सन्त ज्ञानेश्वर को मिलने चल पड़े। उनके पीछे शिष्य गण भी जय जयकार कर चले। इनके ठाठ बाट चमत्कार को देख सन्त ज्ञानेश्वर जिस दीवाल पर बहन मुक्ताबाई निवृति नाथ के साथ बैठे थे, दीवाल से कहा—''दीवाल आगे बढ़ो।'' ''चल दी दीवाल चांगदेव की आगवानी में,'' बस, दीवाल चलने लगी आगे बढ़ने लगी। यह देख चांगदेव ने कहा धन्य है। आप (ज्ञानेश्वरजी) जिन्होंने दीवाल को चेतन कर दिया। गति मान बना दिया। यह कहकर सन्त ज्ञानेश्वर के चरणों पर गिर पड़े। सन्त प्रवर ज्ञानेश्वर ने उन्हें गले लगा लिया। चांगदेव जी सन्तज्ञानेश्वर जैसे गुरुपाकर कृतार्थ हो गये। यह योग साधना है।

योग साधना के द्वारा इच्छा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। योग के द्वारा संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जहाँ तक मेरा विश्वास है योग साधना ही एक ऐसा माध्यम है, जो दुर्लभ को सुलभ कर सकता है। सन्त की विश्रान्ति समाधि में होती है। सन्त सुख प्राप्त करते हैं। समाधि में जो केवल योग से ही सम्भव है। योग के द्वारा जीव परमात्मा का साक्षात् दर्शन कर सकता है। योग द्वारा ही संसार का प्रलय परमात्मा करते हैं। योग द्वारा ही पुनः संसार का उत्थान करते हैं। योग द्वारा ही परमात्मा इस धरा पर अवतरित होते है। योग द्वारा ही श्री सद्गुरुदेव समस्त जीवों को दर्शन देते हैं, कृतार्थ करते हैं।

राम नवमी महोत्सव

योगयोगेश्वर आनन्दकंद श्री सद्गुरुदेव जी की अपार अनुकम्पा से महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज का परमपावन अवतरण दिवस (श्री रामनवमी महोत्सव) समारोह इस वर्ष चैत्र शुक्ला सप्तमी, अष्टमी व नवमी दिनांक २३, २४ एवं २५ मार्च दिन मंगल, बुध एवं गुरुवार को श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई (आगरा) पर परम्परागत धूमधाम से मनाया जायेगा। श्रद्धालु भक्तजन पुण्यलाभ उठायें।

—व्यवस्थापक

सिद्धयोग

योग साधना से चार महत्वपूर्ण सहायक पहलुओं का योगदान

जयनारायण राय (लखनऊ)

योग साधना से यदि साधक शास्त्र (सनातन वेद) अदम्य उत्साह, गुरू एवं काल, इन चार महत्वपूर्ण सहायक पहलुओं का अवलम्बन एक साथ करें तो उसे योग साधना से प्राप्त होने वाली पूर्णता अतिशीघ्र प्राप्त हो जाती है।

वेद

वेद हमारे पूर्ण योग का श्रेष्ठतम शास्त्र है सनातन वेद जो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में गुप्तरूप से विद्यमान है। यह सनातन ज्ञान एवं सनातन पूर्णता का कमल हमारे अन्दर बंद, संकुचित कली के रूप में वर्तमान है। जब साधक का मन सनातन प्रभु की ओर अभिमुख हो जाता है तो उसका हृदय मोहमाया के बन्धन से मुक्त होकर असीम भगवान की ओर आकर्षित हो जाता है। तब क्रमशः होने वाली अनुभूतियों के द्वारा वह ज्ञानकमल शीघ्रता से वा धीरे–धीरे, एक–एक दल करके, विकसित हो जाता है। उसके बाद सारा जीवन, सारे विचार सारी वृत्तियों के कार्य, सारे अनुभव–चाहें वह निष्क्रिय हो या सक्रिय सब के सब प्रहार बनकर अन्तरात्मा के आच्छादन को भंग कर देते हैं तथा अनिवार्य विकास की बाधाओं को दूर कर देते हैं। जो साधक 'अनन्त, को वरण करता है। उसे अनन्त, वरण कर चुकी होती है। इस प्रकार साधक को अवश्यमेव भगवान का दिव्य स्पर्श हो जाता है, क्योंकि इसके बिना आत्मा कभी जाग्रत नहीं हो सकता और न भगवान की ओर उन्मुख हो सकता। जब एक बार यह स्पर्श हो गया तब सिद्धि निश्चित है— फिर चाहे वह एक ही मनुष्य जीवन में शीघ्रता से प्राप्त हो या उसके लिए इस दृश्यमान जगत में अनेक जन्मों तक धैयपूर्वक प्रयत्न करना पड़े।

साधारतः इस आत्मप्रकाश का साधन (श्रुत) शब्द होता है, जिसे 'शब्द ब्रह्म'' कहते हैं। यह शब्द अंदर से आ सकता है अथवा बाहर से भी। परन्तु दोनों ही अवस्थाओं में शब्द केवल साधक के अन्तः स्थित ज्ञान को जगाने, क्रियाशील बनाने का कारण मात्र होता है। अंदर से आने वाला शब्द अन्तः स्थित अन्तरात्मा का होता है, जो सदा भगवान की ओर उन्मुख रहता है। ऐसे साधक निश्चित ही महान् एवं दुर्लभ होते हैं, जिनके लिए इस प्रकार भीतर से प्राप्त होने वाला अमर ज्ञान ही पर्याप्त होता है। उसके लिए किसी लिखित ग्रन्थ या जीवित गुरू के अधीन रहने की आवश्यकता नहीं रहती है।

साधारण तौर पर साधक को आत्म विकास के लिए बाहर से प्राप्त होने वाले भगवतप्रतिनिधि स्वरूप शब्द से सहायता लेने की आवश्यकता अवश्य पड़ती है। वह या तो कोई पुराकालीन शब्द होता है अथवा वर्तमान कालीन किसी जीवित सिद्ध गुरू का शक्तिशाली शब्द। कुछ साधकों के लिए यह शब्द उनके अन्तः स्थिति को जगाने और व्यक्त करने का निमित्त होता है। वस्तुतः पूर्ण योग का साधक किसी ग्रन्थ का या अनेक ग्रन्थों का साधक न होकर अनन्त का साधक होता है जो शब्द ब्रह्म से परे है।

उत्साह

साधक के अदम्य उत्साह एवं संकल्प शक्ति से ही योग साधना के उच्च शिखर पर पहुँचना संभव होता है। सारी योग साधना साधक की उत्कट इच्छा एवं वैयक्तिक चेष्टा पर अवलम्बित रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि साधक की अहंभावापन्न चेतना जो विषयों के बाह्य रूपों और उनके मोह में डूबी रहती है, अन्तर्मुखी होकर भगवतप्राप्ति के लिए रूपान्तरित हो जाती है। भगवतप्राप्ति के लिए हृदय की छटपटाहट और अदम्य उत्साह अंहकार को निगल जाती है। और उसकी पुच्छ एवं सीमाओं को तोड़ डालती है।

पूर्ण योग के साधनकर्म की तीन अवस्थाएँ हैं, जो एक दूसरे से पृथक न होकर एक हदतक परस्पर सम्बद्ध होते हैं। इनमें पहली अवस्था वह है, जिसमें साधक यथासम्भव अपने अहंभाव के परे जाने तथा भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करता है। दूसरी अवस्था में साधक अपनी सारी चेतन सत्ता को रूपान्तरित करने के लिए अपने अंदर उसे, धारण करता है जो उससे परे है। अंतिम अवस्था में साधक संसार में भगवान के एक केन्द्र के रूप में अपनी रूपान्तरित मानव सत्ता का उपयोग करता है। जब तक साधक का सम्बन्ध भगवान के साथ अति घनिष्ट नहीं हो जाता और भगवान के साथ सायुज्य नहीं प्राप्त कर लेता तब तक साधना में व्यक्तिगत प्रयत्न की प्रधानता रहती है। परन्तु जैसे–जैसे यह सम्बन्ध स्थायी होता जाता है वैसे–वैसे साधक को यह ज्ञान हो जाता है कि उसकी शक्ति से भिन्न कोई शक्ति, उसके अपने अहंकार पूर्ण प्रयत्न और योग्यता के परे उसके अंदर कार्य कर रही है। फिर साधक उस असीम शक्ति के अधीन रहना धीरे–धीरे सीख जाता है। अन्त में साधक अपनी इच्छा और शक्ति को भगवद् इच्छा और उनकी परात्परा तथा विश्वात्मिका शक्ति के अन्दर मिला देता है। जब इस प्रकार साधक भगवान के साथ पूर्ण तादात्मय लाभ कर लेता है और अपने आप को पूर्ण रूप से उसके अन्दर मिला देता है, तब वह जगत् में भगवान का केन्द्र हो जाता है।

गुरू

जिस प्रकार पूर्ण योग का परम शास्त्र प्रत्येक मनुष्य के हृदय में छिपा हुआ सनातन वेद है, उसी प्रकार इसके परम पथ प्रदर्शक और गुरू वे ही अन्तर्यामी जगद्गुरू हैं, जो हमारे अंदर गुरू रूप से विराजमान हैं।

वे ही भास्कर ज्ञान दीपक से हमारे तम का नाश करते हैं उनकी वह प्रभा हमारे अंदर उनके आत्म प्रकार की महिमा बनी रहती है। उनका जो मुक्त, आनन्दमय, प्रेममय, सर्वशक्तिमय अमृत स्वरूप है, उसे वे क्रमश: हमारे अंदर खोलकर दिखला देते हैं। पूर्ण योग की सिद्धि के मार्ग में इस अन्तर्यामी गुरू को जो योग के ईश्वर, सब यज्ञों एवं कर्मों के प्रभु, प्रकाश, भोक्ता और लक्ष्य है–पूर्ण रूप से वरण करना अत्यन्त उपयोगी है।

जैसे–जैसे साधक की व्यष्ठि सत्ता महत्सत्ता के साथ तद्रूप और एकीभूत होती जाती है, वैसे–वैसे साधक उन्हें अपनी सत्ता के सत्तात्व के अंदर भी अनुभव करने लगता है।

वस्तुत: मोहमाया के प्रपंच एवं अहंभाव के कारण साधारण मनुष्य अपने अंदर अवस्थित अदृश्य सत्ता पर विश्वास नहीं कर पाता है। ऐसी दशा में मनुष्य बाह्य जगत् में अदृश्य सत्ता के समतुल्य शक्ति वाला सिद्ध गुरू की तलाश करता है, जो माध्यम बनकर भगवत्साक्षात्कार करा दे। इसी कारण भगवान मनुष्य की आवश्यकता के अनुकूल सिद्धगुरूओं को इस असार संसार में उनके कल्याण हेतु प्रेषित करते रहते हैं। मानव जीवन की इस प्रकार की आवश्यकता को पूरा करने के लिए हिन्दुओं की आध्यात्मिक साधना में इष्ट देवता अवतार और सिद्ध गुरू की व्यवस्था है। ''ॐ'' गुरुतत्व का द्योतक है, जो ''सोऽहम्'' में रूपायित है। इष्टदेवता से अभिप्राय है भगवान के उस विशिष्ट नाम रूप का जिसे साधक वरण करता है। यह नाम रूप से स्वयं भगवान ही है। इसी कारण हिन्दू–साधना में गुरू और शिष्य सम्बन्ध की व्यवस्था है। सिद्ध गुरू ऐसे हों, जो शिष्य के भागवत का ज्ञान, भगवदीय आदर्श का बोध कराएँ। पूर्ण योग के सिद्ध गुरू द्वारा उपदेश, दृष्टान्त और प्रभावये तीन उपकरण अपनाये जाते हैं। सिद्धगुरू अपने विचारों को शिष्य के मन पर उतना ही निक्षेप करते हैं, जितना शिष्य ग्रहण करने में सक्षम है। सिद्धगुरू उपदेश करने की अपेक्षा शिष्य के अर्न्तज्ञान को ही जगाने और अनुभूतियों को स्वच्छन्द रीत से बढ़ने देने का प्रयास करते हैं। सिद्ध गुरू उपदेश से अधिक दृष्टांत द्वारा शिष्य में भगवत्साक्षात्कार की अभीप्सा जगाने पर बल देते हैं। पूर्णयोग के गुरू अपने शिष्यों या लोगों में मानव दम्भ और आत्म गौरव की बुद्धि से अपने गुरू होने का दर्प नहीं करता।

काल

जिस पूर्णयोग के साधक को सनातन वेद, अदम्य उत्साह, सिद्ध गुरू एवं काल की सहायताएँ प्राप्त है, उसे अपना लक्ष्य प्राप्त होना सुनिश्चित है। काल के सम्बन्ध में साधक का भाव यही रहता है कि पूर्ण योग सिद्धि के लिए अनन्त समय (काल) उसके हाथ में है। साधक अनन्त धैर्य धारण करते हुए अपनी शक्ति को इस सीमा तक बढ़ाता है कि योग–सिद्धि के चरम बिन्दु पर पहुँचकर वह परम भागवत रूपान्तर की आश्चर्यमयी शक्ति को प्राप्त कर लें।

* * *

योगमार्ग के विघ्न

(लेखक—वैद्यशास्त्री पं० श्रीकमलाकान्तजी त्रिवेदी)

समाधौ क्रियमाणे तु विघ्ना न्यायान्ति वै बलात्।

'समाधिकाल में विघ्न बलपूर्वक आने लगते हैं।' योगी को चाहिये कि उन विघ्नों का धीरे–धीरे त्याग करे। भगवान् पतंजलि ने योगदर्शन में कहा है—

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्श–**नालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।** (समाधिपाद ३०)

'व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व—यह नौ चित्त के विक्षेप हैं, यही अन्तराय (विघ्न) कहलाते हैं।' ये अन्तराय क्या हैं और किस प्रकार इनसे छुटकारा मिलता है, इस बात को योग मार्ग में प्रवेश करने के पहले जानना आवश्यक है।

शरीर को धारण करने में समर्थ होने के कारण धातु नाम को प्राप्त हुए वात, पित्त और कफ की न्यूनाधिकता, खाये तथा पिये हुए आहार–पदार्थों के परिणामस्वरूप रस की न्यूनाधिकता और मनसहित एकादश इन्द्रियों के बल की न्यूनाधिकता को व्याधि अथवा रोग कहते हैं। व्याधि होने पर चित्तवृत्ति उसमें अथवा उसे दूर करने के उपायों में लगी रहती है। इससे वह योग में प्रवृत्त नहीं हो सकती। इसी कारण व्याधि की गणना योग के विघ्नों में होती है। अजीर्ण, नींद की खुमारी, अति परिश्रम प्रभृति से ब्रह्माकारवृत्ति का अभाव हो जाता है। अजीर्ण आदि लय के कारण रूप विघ्नों के निवारण करने के लिये पथ्य और लघु भोजन करने से और प्रत्येक व्यवहार में युक्ति तथा नियम के अनुसार चलने से एवं उत्थान के प्रयत्न द्वारा चित्त को जाग्रत करने से यह विघ्न दूर होते हैं। इस विषय में श्रीकृष्ण भगवान् ने भी अर्जुन के प्रति कहा है—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।
(गीता ६। १६)

'जो अधिक भोजन करता है, जो बिल्कुल बिना खाये रहता है, जो बहुत सोता है तथा जो बहुत जागता है, उसके लिये है अर्जुन योग नहीं है।' बल्कि—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।
(गीता ६। १७)

'जो नियमपूर्वक भोजन करता है, नियमित विहार करता है, कर्म करने में भी नियमपूर्वक रहता है, जागना और सोना भी जिसका नियमपूर्वक होता है, उसके लिये योग दुःख का नाश करने वाला होता है।'

योगसाधन की इच्छा होने पर देश–कालादि

की विपरीतता की कल्पना करके योग–साधना की प्रवृत्ति में जो चित्त की असमर्थता होती है उसे **स्त्यान** कहते हैं। देश–कालादि की कल्पित विपरीतता को दूर करने में सामर्थ्य रहित चित्त की यह अयोग्यता भी योग में प्रवृत्त होने नहीं देती। इसलिये यह भी योग में विघ्न रूप है।

यह वस्तु ऐसी ही है या अन्य प्रकार की है ? इस प्रकार का परस्पर विरोधी और उभयकोटि को विषय करने वाला विज्ञान संशय कहलाता है। 'योग होता है या नहीं ?' 'गुरु और शास्त्र, योग और योग साधना की जो महिमा वर्णन करते हैं वह सत्य है या असत्य ?' 'ईश्वर–प्रणिधान से समाधि लाभ तथा कैवल्य–प्राप्ति सिद्ध होती है या नहीं ?' 'योग का परिणाम कैवल्य सत्य है या यह कल्पनामात्र है?'—इस प्रकार के अनेकों विरोधी तथा उभयकोटि को विषय करने वाले ज्ञान को संशयरूप समझना चाहिये। इस प्रकार के संशय मनुष्य को कभी भी योग में निश्चलतापूर्वक प्रवृत्त नहीं होने देते। अतः ये योग के प्रबल विरोधी हैं। **अतद्रूप प्रतिष्ठत्व** अर्थात् अपने वास्तविक रूप में स्थिर न होने से संशय और भ्रान्तिदर्शन के अभेद होने पर भी उभय कोटि के स्पर्श और अस्पर्श रूप अवान्तरभेद कहने की इच्छा से ही उनका भेद कहा जाता है। इसलिये संशय का नाश कर भ्रान्तिदर्शन में भी श्री सद्गुरु के वचन और शास्त्र प्रमाण में श्रद्धा रखनी चाहिये।

समाधि—साधन में प्रयत्न न करना अथवा उसमें उदासीनता रखना प्रमाद कहलाता है।

कफादि के द्वारा शरीर के भारी होने तथा तमोगुण के द्वारा चित्त के भारी होने से भी योग–साधना में प्रवृत्ति नहीं होती, इसे ही आलस्य कहते हैं।

प्रमाद और आलस्य, ये दोनों यमादि योग साधन में साधक की प्रवृत्ति नहीं होने देते। इसलिये ये दोनों योग में विघ्नरूप हैं।

विषय के समीप रहने से विषय–स्थित दोषों के अत्यन्त विस्मरण के द्वारा विषय–भोग की चित्त में जो तीव्र इच्छा (तृष्णा) होती है उसे **अविरति** अथवा **अवैराग्य** कहते हैं।

विषय—तृष्णा योग की प्रबल विरोधिनी है। क्योंकि वह वृत्ति को अन्तर्मुखी नहीं होने देती। यदि कदाचित् अति यत्नपूर्वक वृत्ति अन्तर्मुखी होती भी है तो फिर अल्प समय में ही विषयों के स्फुरण द्वारा चित्त को क्षुब्ध करके उसे बहिर्मुख कर देती है। स्मृति भी यही कहती है—

निःसंगता मुक्तिपदं यतीनां
संगदशेषाः प्रभवन्ति दोषाः।
आरूढयोगोऽपि निपात्यतेऽधः
संगेन योगी किमुताल्पसिद्धिः॥

'यतियों का संगरहित रहना मुक्ति का स्थान है, संग से सारे दोष उत्पन्न होते हैं। योगारूढ़ भी संग से अधोगति को प्राप्त होते हैं, फिर अल्प सिद्धिवाला अपक्व योगी यदि संग से अधोगति को प्राप्त हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?'

विषय–तृष्णा में दोषदृष्टि करने से यह विघ्न दूर होता है। जिस प्रकार लड्डू में विष डाला गया है— यह बात जान लेने पर भूखा भी उसके खाने

की इच्छा नहीं करता, उसी प्रकार शास्त्रों का अध्ययन और सद्गुरु के उपदेश के द्वारा विषयों में दोष दृष्टि होने पर उनके भोगने की इच्छा नहीं होती।

सद्गुरु तथा योगशास्त्रों के द्वारा उपदिष्ट योगसाधन में असाधनत्वबुद्धि को भ्रान्तिदर्शन या विपर्ययज्ञान कहते हैं। यह भ्रान्तिदर्शन भी विपरीत ज्ञान तथा विपरीत प्रवृत्ति के कारण साधक को योग में प्रवृत्त नहीं होने देता। अतः इसकी गणना योग के विघ्नों में होती है।

मधुमती आदि समाधि की भूमिकाओं में किसी भी भूमिका का अभ्यास करते रहने पर भी किसी कारण से उसका प्राप्त न होना अलब्ध भूमिकत्व कहलाता है। अलब्ध भूमिकत्व भी साधक के चित्त को असन्तोष के द्वारा बहिर्मुख रखने के कारण योग में विघ्नरूप है।

मधुमती आदि योग की भूमिकाओं में किसी भूमिका की प्राप्ति होने पर भी विस्मय अथवा कर्तव्य के विस्मरण या अज्ञान के द्वारा उसमें चित्त को सुस्थिर न करना अनवस्थितत्व कहलाता है। योग की किसी भूमिका के प्राप्त होने पर, इसी से भलीभाँति स्थिरता हुई है, किसी कारण से ऐसा मान लिया जाय और उससे आगे की सुस्थिरता के लिये प्रयत्न नहीं किया जाय तो उसको उत्तर भूमिका की प्राप्ति तो होती ही नहीं, साथ ही उस भूमिका से भी वह भ्रष्ट हो जाता है। अतः प्राप्त हुई योग भूमिका में अपने चित्त को सुस्थिर करने के लिये साधक को प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा प्रयत्न न करने से उस भूमिका में चित्त की अस्थिरता रहती है, और वह भी योग में प्रतिबन्धक होती है।

चित्त को विक्षिप्त करने वाले ये नौ ५.त—मल योग के विघ्न कहलाते हैं। संशय और भ्रान्तिदर्शन रूप वृत्तियाँ भी वृत्तिनिरोध रूप योग की विरोधिनी हैं। और व्याधि आदि वृत्ति न होने पर भी वृत्तियों के साहचर्य से योग में बाधक हैं।

केवल ये नौ ही योग के विघ्न नहीं हैं। बल्कि चित्त के विक्षेप करने वाले इन विघ्नों के साथ दुःखादि अन्य विघ्न भी हैं। भगवान् पतंजलि उनका भी नाश करने के लिये कहते हैं—

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः। (समाधि० ३२)

उस विक्षेप तथा उसके साथ होने वाले दुःखादि की निवृत्ति के लिये एक तत्व का अभ्यास करना चाहिये। इसी प्रकार योगवासिष्ठ में भी कहा है।

तावन्निशीथवेताला वल्गन्ति हृदि वासनाः।
एकतत्त्वदृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।।

जब तक एक तत्व के दृढ़ अभ्यास से मन को पूर्ण रूप से जीत नहीं लिया जाता तब तक अर्द्ध रात्रि में नृत्य करने वाले वेतालों के समान वासनाएँ हृदय में नृत्य करती रहतीं हैं।

इस प्रकार अनेक विघ्न योगी के समाधि में विघ्न रूप से आते हैं; अतएव उनको हटाने का धीरे—धीरे यत्न करना चाहिये।

इस विषय का एक दृष्टान्त है। एक चरवाहे को रखवाली करने के लिये दी हुई एक बछिया जंगल में भटकती है और भटकने की आदत सीखती है। पीछे जब वह गाभिन हो जाती है तब कुछ खिलाने का लालच देकर उसे लोग घर ले आते हैं

पर उसको भटकना छोड़कर घर पर रहना अच्छा नहीं लगता, और मौका पाकर वह फिर निकल जाती है। पीछे फिर पकड़कर लायी जाती है। ऐसा करते–करते जब वह ब्याती है तब अपने बछड़े के प्रेमपाश में ऐसी बँध जाती है कि फिर लाठी से मारकर बाहर निकालने पर भी नहीं निकलती। इसी प्रकार बुद्धिरूपी बछिया संसार रूपी जंगल में भटकती है और विषयभोगरूपी कुटेव सीखती है। पीछे पुण्योदय होने पर जब वह मुमुक्षारूप गर्भ धारण करती है तब योगद्वारा बुद्धि को स्थिर करने का प्रयत्न होता है, तथा ध्यानादि क्रियाओं के द्वारा उसे रसरूपी भोजन प्राप्त होता है। तथापि भटकने की आदत होने के कारण मौका मिलते ही बुद्धि चलायमान हो जाती है। परन्तु बुद्धि को जब समाधि द्वारा ज्ञान रूपी वत्स उत्पन्न होता है तब उसके प्रेम में निमग्न होकर वह किसी भी दुःख रूपी प्रहार से घबराकर घर नहीं छोड़ती अर्थात् कभी बहिर्मुख नहीं होती। इस प्रकार दोषों को निवृत्त कर निरोध प्रयत्न के द्वारा निश्चल किया हुआ चित्त स्वाभाविक चंचलता से विषयाभिमुख होकर बाहर जाय तो उसे फिर निरोध प्रयत्न से ब्रह्म में लगावे। इस प्रकार ब्रह्म में एक हुआ चित्त लय तथा स्तब्ध अवस्था में नहीं जाता, शब्दादि विषयाकार वृत्ति का अनुभव नहीं करता तथा रस का भी आस्वादन नहीं करता। यह निवात प्रदेश में दीप शिखा के समान अचल होकर किसी भी विषय के आकार को न धारणकर केवल ब्रह्माकार होता है। यह **अद्वैतभावनारूप निर्विकल्प** समाधि है। यह अद्वैतभावनारूप वृत्ति भी केवल शुद्ध सात्विक होकर परब्रह्म का अनुभव कर स्वयं लीन हो जाती है। इसलिये योगाभ्यास करने वाले को इन सब विघ्नों को दूर करने के लिये प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिये। क्योंकि **'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'**— श्रेयस्कर कार्य में अनेकों विघ्न आते हैं, यह प्राकृतिक नियम है। इसलिये विघ्न करने वाले उपकरणों में लोभवश न फँसकर उनसे सदा सचेत रहना चाहिये, क्योंकि वे बलपूर्वक फँसाते हैं।

* * *

श्रद्धांजलि

'सिद्धयोग' के पाठकों को यह दुःखद समाचार देते हुए अपार शोक है कि परमपूज्य श्री गुरुदेव के अनन्य भक्त आई.आई.टी. कानपुर के श्री नारायण दत्त शर्मा अब हमारे बीच नहीं रहे। योग प्रचार कार्यक्रम को उत्तरोत्तर गति प्रदान करने वाले इस पुरोधा ने शनिवार दिनांक २ जनवरी १९९९ को अपराह्न अंतिम श्वांस ली। उनकी रिक्तता हम सभी को सदैव सालती रहेगी। 'सिद्धयोग' परिवार दिवंगत आत्मा को परम शान्ति प्रदान करने की परमपिता से प्रार्थना करते हुए उन्हें श्रद्धा–सुमन अर्पित करता है।

—सम्पादक

'सिद्धयोग' मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं० ४

१. प्रकाशन का स्थान	—	श्री सिद्धगुफा, सवाँई, आगरा (उ० प्र०)
२. प्रकाशन का अवधिक्रम	—	मासिक
३. मुद्रक का नाम	—	विनय गजानन शर्मा।
राष्ट्रीयता	—	भारतीय।
पता	—	कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा—२८२००१।
४. प्रकाशक का नाम	—	विनय गजानन शर्मा कृते सिद्धगुफा प्रकाशन, सवाँई (आगरा)
राष्ट्रीयता	—	भारतीय।
पता	—	श्री सिद्धगुफा योग–प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (आगरा)
५. सम्पादक का नाम	—	आचार्य ब्र० रासलाल शर्मा।
राष्ट्रीयता	—	भारतीय।
पता	—	श्री सिद्धगुफा योग–प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (आगरा)
६. स्वत्वाधिकारी	—	ब्रह्मलीन अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

मैं विनय गजानन शर्मा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

दिनांक —२८ फरवरी १९९९

कृते सिद्धगुफा प्रकाशन

विनय गजानन शर्मा

श्री सिद्धगुफा संवाई माघ मेला शिविर

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी परम पूज्य श्री गुरुदेव जी महाराज का इलाहाबाद का अपना कार्यक्रम पौष पूर्णिमा दिनांक २ जनवरी १९९९ से प्रारम्भ होकर माघ पूर्णिमा २ फरवरी १९९९ तक चलेगा।

माघ मेला क्षेत्र में परम पूज्य श्री गुरुदेव जी का शिविर प्लाट नं० १, रामानुज मार्ग, पूर्वी पट्टी पर यथास्थान रहेगा।

माघ मेले के मुख्य स्नान पर्व दिनांक २ जनवरी को पौष पूर्णिमा, १४ जनवरी को मकर संक्रांति, १७ जनवरी को मौनी अमावस्या, २२ जनवरी को बसन्त पंचमी एवं २ फरवरी को माघी पूर्णिमा पड़ रही है। इसी बीच दिनांक १० जनवरी से भागवत सप्ताह प्रारम्भ होगा और दिनांक १७ जनवरी, मौनी अमावस्या के दिन उसका समापन होगा।

अतः आप सभी भाई–बहनों से निवेदन है कि शिविर में पधारकर श्री प्रभुजी के दरबार में सत्संग का लाभ उठायें।

रवि नारायण मालवीय

श्री सिद्धगुफा योग साधना मंदिर, इलाहाबाद

प्रेषण कार्यालय :—

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER

Book Post

श्री ------------------------

यावद्वा यत्किञ्चिद्विषदोषस्फूर्तिरस्ति चेद्देहे।
कथमारोग्याय भवेत्तद्वदहन्तापि योगिनो मुक्त्यै।।

विवेक चूड़ामणि ३०४

जब तक देह में विष का थोड़ा भी दोष रहता है, तब तक वह उसे नीरोग कैसे रहने देगा ? उसी प्रकार योगी की मुक्ति के मार्ग में अहंकार का यत्किञ्चित् लेश भी भारी प्रतिबन्धक होता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई काली, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिण्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326